श्री

तदीयसर्वस्व

अर्थात्

श्री नारद कृत भक्ति सूत्र का वृत्ति समेत बृहत् भाष्य ।

प्रेमिजनों के दासानुदास प्रेमपथ के भिक्षुक तदीयनामांकितअनन्यवीरवैष्णव

हरिश्चन्द्र

द्वारा

'केनापिदेवेन हृदिस्थितेन'

लिखित

" भक्त्यात्वनन्यया लभ्यो हरिरन्यत् विडम्बनम् "

पटना—"खड्गविलास" प्रेस—बांकीपुर ।

साहब प्रसाद सिंह ने मुद्रित किया ।

१८८९.

उपक्रम ।

हम आर्य्य लोगों में धर्म तत्व के मूल ग्रन्थों का भाषा में प्रचार नहीं। यही कारण है कि भिन्नता स्थान २ पर फैली हुई है। अनेक कोटि देवी देवताओं का माहात्म्य, छोटी छोटी बातों में ब्रह्महत्या का पाप, और तुच्छ तुच्छ बातों में बड़े बड़े यज्ञों का पुण्य, अहं ब्रह्म का ज्ञान, और मूल धर्म छोड़ कर उपधर्मों में आग्रह ने भारत वर्ष से वास्तविक धर्मों का लोप कर दिया। जिस जगत् कर्त्ता ने हमलोगों को उत्पन्न किया, संसार के सुख दिए, बुरे भले का ज्ञान दिया, और अपना सत् मार्ग दिखलाया उस से यहाँ की प्रजा विमुख हो कर धर्मान्तर में फंस गई। यदि प्रथम कर्त्तव्य उस की भक्ति के अनन्तर कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त होते तो कुछ बाधा नहीं थी। वह न होकर गौण कर्म तो मुख्य हो गए और मुख्य वस्तु गौण हो गई। इसी से सारा भारतवर्ष भगवद्विमुख हो कर छिन्न भिन्न हो गया जो कि इस की अवनति का मूल कारण हुआ। कभी भगवद्विमुख कोई देश या जाति उन्नत हो सकती है? धर्म हमारा ऐसा निर्बल और पतला हो गया है कि केवल स्पर्श से वा एक चुल्लू पानी से मर जाता है। कच्चे गले सड़े सूत वा चिउंटी की दशा हमारे धर्म की हो गई हैं। हाय!!!

इसी धर्म पथ को समुन्नत करने को एक ईश्वरवादी अनेक आचार्यों ने परिष्कृत और सहज धर्म प्रचलित किए हैं और अनेक लोग इन मार्गों में दीक्षित हैं। किन्तु इन लोगों में भी बाह्यवेष बाह्याडम्बर आचार बिचार वा परनिन्दादि आग्रह ऐसे समा गए हैं कि उन का धर्म किसी काम नहीं आता। या तो ईश्वरवादी हिन्दूसमाज से सम्पूर्ण बहिष्कृत हो जायंगे या कर्ममार्ग से ऐसे दब जायंगे कि नाम मात्र के भक्त रहेंगे।

इसी विषमता को दूर करने को इस ग्रन्थ का आविर्भाव है। इस में मुक्त कण्ठ से कहा गया है कि केवल प्रेम परमेश्वर का दिव्य मार्ग है। यद्यपि यह ग्रन्थ वैष्णवों की शैली पर लिखा गया है किन्तु परमेश्वर के भक्तमात्र के हेतु यह उद्योग है। क्रिस्तान आदि विदेशी धर्म्म प्रेमी जन समझें कि कृष्ण उन के निर्गुण परमेश्वर का नाम है, वैष्णवों को तो कुछ बात ही नहीं है, शैव कहें कि विष्णु शिव ही का नामान्तर है, ब्राह्म समझें कि हरि ब्रह्म ही को कहते हैं, उपासना और आर्य समाज इसे अपना ही तत्व मानें, सिक्ख

इस में गुरु का पद देखें और ऐसे ही भक्ति मार्ग वाले मात्र सब लोग इसको अपनी निज सम्पत्ति समझें। इस से कोरे कर्म मार्गी वा बहु भक्त वा स्वयं ब्रह्म लोग यदि मुझ को गाली भी देंगे तो मैं अपने को कृतार्थ समझूंगा॰

लोगों को उचित है कि इस ग्रन्थ को देखें॰ निश्चय रक्खें कि परमेश्वर को पाने का पथ केवल प्रेम है॰ और बातें चाहे धर्म की हों या लोक की दोनों बेड़ी ही हैं॰ बिना शुद्ध प्रेम न लोक है न परलोक॰ जिस संसार में परमेश्वर ने उत्पन्न किया है जिस जाति वा कुटुम्ब से तुम्हारा सम्बन्ध है और जिस देश में तुम हो उस से सहज सरल प्रेम करो और अपने परम पिता परम गुरु परम पूज्य परमात्मा प्रियतम को केवल प्रेम से ढूंढ़ो बस और कोई साधन नहीं है॰

हरिश्चन्द्र।

समर्पण।

नाथ!

आज बहुत दिन पर कुछ कहने चले हैं। कुछ कहते कहां से वैसा चित्त रहता तब न कहते। क्या आप से कुछ छिपो है। भला आप से क्या आप तो ००००० हैं आप के लोगोंही से न छिपेगी। बोल चाल ही से मालूम पड़ेगी। प्यारे! ऐसा क्यों? हम हजार बुरे बुरे बुरे लाख दफे बुरे पर आप तो भले हो न? फिर क्यों? क्या हमारी करनी पर गए? तब तो हो चुको। भला ध्यान तो कीजिए हम से वा किसी से भी आप से तुलना क्या? हाय! तुलना क्या कुछ बात ही नहीं। हरे! हरे! जो आप अपनी बड़ाई देखिए तो हम क्या बड़े २ क्या हैं। पर ऐसी तो नाथ ने आज तक कभी की नहीं यह नई क्यों होती है। नाथ! अपनाए की लाज तो हम पामरों की होती है तो बड़ों को क्यों न हो, और फिर जो जितना बड़ा वैसी हो उस की दयालुता भी बड़ो तो फिर आप की कृपा का क्या पूछना है। पर हाय क्या हमारे अपराध उस दया से भी बड़े निकले। प्यारे! क्या इसीं दशा में रहैं? नाथ! क्या वे दिन अब दुर्लभ हो जायंगे। हाय! उन पवित्र आंसुओं से क्या अब हृदय नहीं सिंचित होगा। क्या वे सर्व चिन्ता विस्मारक प्रियालाप अब कर्ण रन्ध्रों को फिर न पूर्ण करेंगे। क्या वे दिन अब इस जीवन में निस्सन्देह दुर्लभ हो गए। तो फिर ऐसे जीवन ही से क्या? हम जीवन की आशा ही क्यों करते हैं। केवल जनम भर पाप कमाने और आप को और अपने को झूठ बदनाम करने को। धिक! ऐसे जीवन पर। हम तो इस की आशा इसी से करते थे कि दिन दिन हमारी चित्त वृत्ति उज्ज्वल होगी और दिन दिन प्रेमानन्द बढ़ेगा इस हेतु नहीं कि प्रवाह रज्जु में हम दिन दिन और जकड़ते जायंगे और केवल जीवन भार ढो कर संसार में खिन्न हो कर अन्त में आप के कहला कर भी वैसे ही डूबैंगे जैसे तुम्हारे बिना संसार डूबता है। जीवन का परम फल तुम्हारा अमृत मय प्रेम है यदि वही नहीं तो फिर यह क्यों? क्या संसार में कोई ऐसा है जिससे प्रेम करें। जो फूल आज सुन्दर कोमल हैं और जो फल आज सुस्वादु हैं, पर काल न इन में रंग है न रूप न स्वाद, सूखे गले मारे मारे फिरते हैं भला उन से अनुराग ही क्या? प्रेम को तो हम चिरस्थाई किया चाहैं यहां प्रेम पात्र ही स्थाई नहीं। तो बस्सो बस हो चुको फिर इन से प्रीति का फल ही क्या? फल शब्द से आप कोई वांछा मत समझिएगा। प्रेम का यह सहज स्वभाव है कि वह प्रत्युत्तर चाहता है सो यहां दुर्लभ है। हम ने माना कि ऐसे भी सत् लोग हैं जो प्रेम का प्रत्युत्तर दें वह भी तो परिणाम दुःख स्वरूप ही है। "संयोगाविप्रयोगान्ता:"

कहा ही है। तो जिस के परिणाम में दुःख है वह वस्तु किस काम की। फिर उस दुःख में जीवन की कैसी बुरी दशा होगी। तो ऐसे प्रेम ही से क्या और जीवन ही से क्या इसी से न कहा है "जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिर जहाज पर आवै।" और जाय कहां। तो देखो संसार से वह कितना उदासीन है जिस को तुम्हारे प्रेम का लेश भी है। तो नाथ! जो फिर उस उत्तम जीव को इसी संसार के पंक में फंसाओ तो कैसे बनै। हम ने माना कि हमारी करनी वैसी नहीं। हाय! भला यह किस मुंह से और कौन कह सकता है कि हम इस के योग्य हैं पर अपनी ओर देखो। नाथ! अब नहीं सही जाती। कृत्रिम प्रेम परायण और स्वार्थ पर संसार से जी अब बहुत ही घबड़ाता है। सब तुम्हारे स्नेह के बाधक ही हैं साधक कोई नहीं, और जो स्वार्थ पर नहीं है वे बिचारे भी क्या हैं कि कुछ सन्तोष देंगे, हाय! क्या करैं। हार कर के स्नेह कर के जैसे हो वैसे तुम्हारे ही शरण आते हैं और वहां से भी दुरदुराए जायं तो फिर क्या करैं। अन्त हो गई नाकों में दम आ गई अब नहीं सही जाती। इस चर्व्वित चर्व्वण को कब तक चबायं। सच कहते हैं अब किसी की बात भी नहीं सुहाती। यद्यपि चित्त परबस हो कर दिन २ उलटा फंसता जाता है और संसार का और अपने जीवन का मोह बढ़ता ही जाता है पर साथ ही जी भी ऐसा खिचता जाता है जिस का कुछ कहना नहीं। धन के विषय में भी वैसा ही कीजिए। सारे संसार को दिखा-इए कि हमारे यों डंका दे कर इस संसार रूपी शत्रु दुर्ग से निकलते हैं और मेरा भी मान रख लीजिए। हे नित्यनूतन घन नित्य नव प्रेम बरसाइए।

हाय! आज हमने आप को कितना कष्ट दिया और कितना बके। जमा भी तो कितने दिन से हो रहा था। और फिर बकैं किस के आगे। बकने ही से तो कुछ सन्तोष होता है। जाने दीजिए। देखिये यह आप के लोगों का सर्व्वस्व है इसे अंगीकार कीजिए। भला कहां परम पवित्र अमृतमय प्रेम मार्ग कहां हमारी पामर बुद्धि। पर क्या हुआ। ऐसी उत्तम बातैं जो मुंह से निकली हैं यह हमारी करतूत नहीं है तुम ने कही है। शिव वा नारद कौन हैं? आप ही। यद्यपि जब बुझ जाय तब काठ का काठ है पर जब तक अग्नि के संग से दहकता रहै काठ भी आग ही कहलाता है। शराबी की कोई जाति नहीं होती है। थोड़ी शराब पीयै तो शराबी बहुत पीयै तो शराबी। इसी नाते इतना बके हैं। इसे सुन कर प्रसन्न होना सुधारना इस का प्रचार करना यह सब तुम्हारा और तुम्हारे जनों का काम है हमारी तो कर्त्तव्यता इतनी ही थी कि निवेदन कर दिया!

चैत्र शुक्ल ५ सं० १९३३।] आप का हरिश्चन्द्र।

श्री तदीयसर्वस्व ।

भक्तिसूत्र का उपक्रम ।

दोहा ।

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर ।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर ॥
करि करुना लखि जग बिमुख, कियो प्रेम पथ चारु ।
जय बल्लभ ब्रज गोपिका, प्रीति कृष्ण अवतारु ॥
जिहि लहि फिर कछु लहन की, आस न चित मैं होय ।
जयति जगत पावन करन, कृष्ण बरन यह दोय ॥

१ ॐ अथातोभक्तिं व्याख्यास्यामः ।

अब हम यहां से भक्ति की व्याख्या करते हैं । १ ।

अथ शब्द मङ्गल वाचक है । अतः शब्द से नारद जी अपने कहे हुए पूर्वोक्त बाक्यों को व्यावर्तन करते हैं । और इन सूत्रों के द्वारा प्रतिज्ञा पूर्वक भक्ति शास्त्र का व्याख्यान आरंभ करते हैं ।

२ ॐ सा कस्मै परमप्रेमरूपा ।

वह ईश्वर में परम प्रेम रूपा है । २ ।

सा नाम पूर्वोक्त भक्ति कस्मै नाम सदा प्रश्नार्ह ईश्वर में परम प्रेम रूपा अर्थात् साधनान्तर शून्या है कि शब्द से ईश्वर का ही बोध होता है क्योंकि ईश्वर में सदा प्रश्न बनाही रहता है । " नैकः सर्वः सवः कः किं " विष्णु सहस्र नाम में भगवान के नाम हैं क्योंकि वेद ईश्वर के विषय में ' नेतिनेति ' बोलते हैं ।

३ ॐ अमृतस्वरूपा च ।

और अमृत स्वरूपा है । ३ ।

अमृत नाम मधुर है और मोक्ष स्वरूप है क्योंकि जो भक्ति रत हैं उनको मोक्षांतर की अपेक्षा नहीं होती ।

४ ॐ यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवत्यमृती-भवति तृप्तोभवति ।

जिसको पाकर मनुष्य सिद्ध होता है और अमृत होता है और तृप्त होता है । ४ ।

यत् अर्थात् भक्ति स्वरूप अमृत को पाकर सिद्ध नाम साधनांतर निरपेक्ष और अमृती भवति नाम स्वयमानन्द रूप होता है मृत्यु से निडर हो जाता है तृप्त अर्थात् एतत् व्यतिरिक्त इस या परलोकगत सुखविषयक निरीच्छ होता है ।

५ ॐ यत्प्राप्य न किंचिद्वांछति न शोचति न द्वेष्टिं न रमते नोत्साहीभवति ।

जिसको पाकर (मनुष्य) फिर न किसी को चाहता वा (किसी हेतु) शोक करता, वा (किसी का) द्वेष करता वा (किसी में) रमता वा (किसी विषय का) उत्साह करता है ।५।*

क्योंकि पूर्वोक्त बातों का मुख्य कारण मन है परन्तु जब वह इसने भक्ति से किसी (परमेश्वर) को अर्पण किया है तो उसके अभाव से ये बातें आप न होंगी क्योंकि कार्य कारण के बिना नहीं हो सकता ।

६ ॐ यज्ज्ञानान्मत्तोभवति स्तब्धोभवत्या-त्मारामोभवति ।

जिसको जानकर पागल हो जाता है स्तब्ध हो जाता है और आत्माराम हो जाता है । ६ ।

---

* कोष्ट में दिये हुये शब्द पूर्व मुद्रित मूल वृत्ति में नहीं है ।

भक्ति का स्वरूप कह कर सूत्र में फल कहते हैं कि उस भक्ति का स्वरूप जान करके मनुष्य मत्त अर्थात् पागल होजाता है 'जड़ोन्मत्तपिशाचवत्' निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान् वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि । यदातिहर्षोत्पुलकाश्रु गद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति । यदा ग्रहग्रस्तइव क्वचिद्धसत्या क्रंदते ध्यायति वंदते जनं ॥ मुहुःश्वसन् वक्ति हरे जगत्पते नारायणेत्यात्मगति र्गतत्रपः । तदा पुमान् मुक्तसमस्तबंधनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः ॥ निदग्धबीजानुशयोमहीयसा भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥ श्रीमद्भागवत में परम भागवत श्री प्रह्लाद जी ने दैत्य पुत्रों को उपदेश करती समय भक्तों के वर्णन में ये तीन श्लोक कहे हैं । (यहां यह भी बात समझनी चाहिए कि ये असुर बालक उपदेशपात्र नहीं थे तथापि भक्त जनों के चित्त में जो प्रेम का उमङ्ग आता है तो पात्रापात्र का विचार नहीं करते) भक्त जन भगवान के अनेक लीलार्थ धारण किए हुए स्वरूपों के कर्म और अतुल्य गुण और वीर्यों को सुन कर जब अत्यन्त हर्ष से रोमांचित अश्रु से गद्गद् कण्ठ हो जाते हैं तब बड़े ऊंचेस्वर से गाते रोते नाचते हैं कभी भूत लगे हुए मनुष्यों के समान हंसते हैं और चिल्लाते हैं कभी बारंबार लंबी सांस लेते हैं कभी तादात्म्य गति से 'हेहरे, नारायण, जगत्पते,' आदि नाम कीर्तन लज्जा छोड़ के करते हैं । जब ऐसी गति हो जाती है तब मनुष्य सब बन्धनों से छुट कर भगवद्भाव ही के भाव, वही अनुकरण. वही चेष्टा, वही आशय, वैसी ही आकृत्यादि करने लगता है और अपने प्रेम से सुकर्म दुष्कर्मों के बीजों को जला कर अपने परम भक्ति से भगवान को प्राप्त होता है ।

तो परम भक्ति प्राप्त होने का यही लक्षण है कि मनुष्य पागल हो जाता है और स्तब्ध हो जाता है अर्थात् उसको लोक और वेदभूत प्रेत देवता इत्यादि किसी को मानना वा किसी को नमस्कार वा किसी का किसी रीति आदर करने की आवश्यकता नहीं रहती, और आत्माराम हो जाता है अथात् संसार के विषयों में प्रीति छोड़ आत्माराम अर्थात् ईश्वर ही में सदा रमण करता है ।

पहिला अनुवाक समाप्त हुआ

७ ॐ सा न कामयमाना निरोधरूपात् ।

वह (भक्ति) कामना के अर्थ नहीं होती क्योंकि (यह) निरोध रूपा है ७ ।

जो कामना के लिए की जाती है वह भक्ति नहीं वह लोक व्यापार है, जब श्री नृसिंह जीने श्रीप्रह्लाद जी को बर मांगने के हेतु कहा तब उन्हों ने भी यह उत्तर दिया कि हम ने आपसे व्यापार नहीं किया भक्ति किया। जो सेवक होकर सेवा के बदले में सेव्य से कुछ चाहे वह सेवक नहीं किन्तु व्यापारकारी बनिया है, और यदि आप बर देना चाहें तो यही दीजिए कि 'हमारे मनमें किसी बर वा राज्य भोगादिं वांछा की उत्पत्ति ही न हो.' भगवान् ने श्री मुख से भी यही आज्ञा किया है " नमय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्प्यते । भर्जिताः क्वथिता धाना भूयो बीजाय नेष्यते " ॥ जिन लोगों का चित्त हमारे में शुद्ध रीति प्रतिष्ठित है उनके काम कामना के अर्थ नहीं होते क्योंकि भूने और कूटे वा पकाये धान फिर नहीं उगते ।

इस सूत्र से विषयजन्य प्रेम का भी निवारण किया, इस्से लोग संसार के विषयियों के इन्द्रियजन्य सुख वा और किसी इच्छा से की हुई प्रीति को हम किसी पर प्रेम करते हैं यह कह कर इस प्रेम शब्द को लज्जित न करैं, क्योंकि प्रेम तो सर्वदा कामना शून्य है ॥

कामना ही के निवृत्ति के अर्थ कहते हैं कि वह भक्ति निरोध स्वरूपा है तो जब चित्त निरुद्ध होगा तो उस में कोई कामना आपही न होगी ।

भक्तिमार्गीय परमाचार्य श्रीश्रीवल्लभाचार्य. महा प्रभु ने अपने ग्रंथ निरोध लक्षण में लिखा है, 'अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः । निरुद्धानां तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते ॥ हरिणा ये विनिर्मुक्तास्ते मग्नाभवसागरे । ये निरुद्धास्तएवात्र मोदमायांत्यहर्निशं' ॥ आप आज्ञा करते हैं मैं रोध से निरुद्ध हूं और निरोध की पदवी को प्राप्त होचुका हूं तथापि निरोधाधिकारियों के निरोध के अर्थ निरोध का बर्णन करता हूं, फिर आप आज्ञा करते हैं कि जिन को भगवान ने छोड़ दिया है वे संसार में डूबे हुए हैं और जिनको उस ने निरुद्ध किया है वही अहर्निश परमानन्द प्राप्त करते हैं, इस वाक्य से यह दिखाया कि निरुद्ध होना स्वसाध्य नहीं है जिनको वह [ईश्वर] चाहता है निरुद्ध करता है, नहीं तो उसे

छोड़ देता है। मनुष्य का तक केवल उस मार्ग पर प्रवृत्त होना है परन्तु इससे निराश न होना चाहिये कि जब अंगीकार करना वा न करना उसी के आधीन हैं तो हम क्यौं प्रयत्न करैं हमारे क्लेश करने पर भी वह अंगीकार करे वा न करे ऐसी शंका कदापि न करना। क्योंकि आचार्य आज्ञा करते हैं कि " क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तोयदा भवेत्। तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः ॥ सर्वानन्दमयस्यापि कृपानन्दः सुदुर्लभः। हृद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान् तस्मात्सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः। सदानन्दपरैर्गेयाः सच्चिदानन्दता ततः।" जनों को क्लेशित देख करके जब वह कृपायुक्त होता है तब सर्व सदानन्द रूप बाहर और अन्तः प्रगट कर देता है सर्वानन्दमय को भी उस के कृपा का आनन्द दुर्लभ है परंतु हृदय में बैठा हुआ जब अपने गुणों को सुनता है तो अपने कृपानन्द से लोगों को भिजो देता है इस हेतु और सब बखेड़ा छोड़ कर सदानन्द पर निरुद्ध लोगों को उसका गुण सदा गाना चाहिए। उससे सच्चिदानन्द का आप से आप प्रागव्य होता है। अर्थात् नियम है कि जो सब परित्याग करके उसका भजन करेंगे उसको वह निरुद्ध करके परमानन्द दान करेहीगा। यही उस की प्रतिज्ञा भी है " कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति। तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् " ॥ इस से उस के वाक्य पर विश्वास रख कर निरुद्ध होना चाहिए।

निरोध छः प्रकार का है अर्थात् छः प्रकार की भावना ईश्वर में करने से मनुष्य निरुद्ध होता है यथा प्रथम 'भीतिभावनिरोध' अर्थात् संसार के दुःखों से भय भीत होकर ईश्वर में अवलम्ब करना. दूसरा "स्वामिभावनिरोध" अर्थात् ईश्वर को संसार का स्वामी मान कर दास भाव से निरुद्ध होना. तीसरा "सर्वभावनिरोध" अथात् ईश्वर को 'वासुदेवःसर्वमिति समहात्मा सुदुर्लभः' इस वाक्य के अनुसार छोटे बड़े चेतन सब को ईश्वर मान कर नमस्कार करना और सब स्थान पर उसी को देखना. वा स्वामी माता पिता मित्र सब भाव से ईश्वर ही का भजन. चौथा "सख्यभाव निरोध" अर्थात् ईश्वर ही को सखा मान कर निरुद्ध होना. पांचवां "वात्सल्यभावनिरोध" अथात् श्री नन्द यशोदादिक ब्रज के बड़े छोटे गोप गोपियों के वा इनके सदृश और किसी के भाव समान ईश्वर में पुत्रवत् स्नेह करना. छठा "कान्तभावनिरुद्ध होना" इन छ निरोधों में पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तर अधिक हैं।

८ ॐ निरोधस्तु लोकवेदव्यापारसंन्यासः ।

निरोध तो लोक, वेद व्यापार का त्याग करना* है ।८।

इस सूत्र में निरुद्ध होने का स्वरूप कहते हैं कि लोक और वेद के व्यापार का छोड़ देना ही निरोध है ।

९ ॐ तस्मै अनन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च ।

और उसमें अनन्यता और उसके विरोधियों पर उदासीनता भी निरोध है । ९ । *

अर्थात् बिना अनन्यता हुए निरोध की सिद्धि नहीं होती ।

१० ॐ अन्याश्रयाणां त्यागोऽनन्यता ।

अन्य आश्रयों का त्याग करना अनन्यता है । १० ।

लोक में यह प्रत्यक्ष है कि स्वामी को सेवक, मित्र को मित्र, पुरुष को स्त्री वही प्रिय होगी जो अनन्य हो 'अनन्याश्चिन्तयन्तो मामित्यादि' श्रीमद्वाक्य भी है, व्यास सूत्र में भी 'अनन्याधिपतिः' ईश्वर का गुण लिखा है ।

११ ॐ लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता ।

लोक और वेद में श्रीमद्भगवदनुकूलाचरण करना यही 'तद्विरोधिषूदासीनता' है । *

---

* ८ पूर्व मुद्रित सूत्र वृत्तिमें संन्यास शब्दका अर्थ 'सकोड़लेना' किया है ।

* ९ पूर्व मुद्रित सूत्रवृत्ति में इसका अर्थ यों है—'और भगवान में अनन्यता और उस अनन्यता के विरोधी कर्मों से उदासीनता है ।'—

* ११ पूर्व मुद्रित सूत्रवृत्ति में यह अर्थ है—'और लोक या वेद में केवल उन्हीं (प्रेमपात्र) के अनुकूल आचरण करने से उस अनन्यता के विरोधी कर्मों में उदासीनता आप से आप होती है ।'

अर्थात् जब हमने उनके अनुकूल ही सब आचरण किए तो तद्विरोधियों में उदासीनता आपही आ गई क्योंकि तदीय होनेही से जिनके सब पुरुषार्थ पूर्ण होगए हैं और सब मङ्गलामङ्गल नष्ट होगए हैं उनको कार्यान्तर करने की आवश्यकता ही नहीं तो उनके वैदिक वा लौकिक कार्य आपही निवृत्त होगए ।११।

१२ ॐ भवतु निश्चयदार्ढ्यादूर्ध्वं शास्त्ररक्षणं ।

निश्चय के दृढ़ होने के पहिले शास्त्र रक्षा * होय ।१२।

क्योंकि श्रीमुख से आप ने आज्ञा किया है " त्रैगुण्यविषयावेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन । निर्द्वन्द्वो नित्य सत्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥ यावानर्थ उदपाने सर्व्वतः संप्लुतोदके । तावान् सर्व्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ कर्म्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन । माकर्मफलहेतुर्भूर्मातेसंगोस्त्वकर्मणि ॥" हे अर्जुन बेद त्रिगुण विषय हैं तू तो तीनों गुणों की प्रवृत्ति से अलग होकर निर्द्वन्द्व और अपने स्वरूप में स्थित हो और अपने योग क्षेम की चिन्ता मत कर । परन्तु जब तक तेरे हृदय में अर्थों की तरंग उठती हैं तब तक तेरा सब बेदों में ज्ञाता ब्राह्मण के (कहे) अनुसार कर्म में अधिकार है वहां भी कर्म के फल में तेरा अधिकार नहीं इससे न तो तू फलों की इच्छा कर और न अकर्म्मी हो । तो जब तक कामना की तरंग चित्त में उठती हैं और जब तक अनन्या भक्ति दृढ़ नहीं हुई है तब तक वेद मानो फिर छोड़ दे ।

१३ ॐ अन्यथा पातित्याशंकया ।

अन्यथा पतित होने की शंका है । १३ ।

अर्थात् जो सिद्ध होने के पहिले कर्मों को छोड़ दे और न यह सिद्ध हो न वह तो व्यर्थ पतित हो जाता है परंतु भगवत्कर्म करता हुआ अन्य कर्मों से च्युत जो सिद्ध न होगा तौ भी उस जीव का नाश नहीं हैं और जीव का कल्याण है. जड़भरतजी का उदाहरण इस में प्रमाण है. क्यौंकि उन्हों ने अपने मुख से कहा है. " अहं पुरा भरतोनाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसंगबंधः । आराधनं भगवत ईहमानो मृगोभवं मृगसंगाद्धतार्थः॥ सा मां स्मृतिर्मृगदेहेपि वीरकृष्णार्चनप्रभवा नो जहाति । अतो ह्यहं जनसंगादसंगोविशंकमानो विवृतश्चरामि " श्रीमुख से भी

---

* १२ अर्थात् शास्त्र के कहे हुए कर्मों का अनुष्ठान ।

आप ने आज्ञा किया है " पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्यविद्यते । नहि कल्याण-कृत् कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति " इत्यादि ।

१४ ॐ लोकोपि तावदेव किंतु भोजनादि-व्यापारस्त्वाशरीरधारणावधि ।

लोक (लोकव्यवहार) भी तभी (अर्थात् निश्चय होने के पूर्व) तक है किन्तु भोजनादि व्यापार तो जब तक शरीर है तब तक है । १४ । *

. इस में कितने लोग ऐसी शंका करते हैं, वरञ्च हंसते हैं कि जब खाना पीना आदि व्यवहार छूटता ही नहीं तो कर्म छोड़ देना यह अयुक्त है । परन्तु इसी शंका के निवारणार्थ यह सूत्र है, भोजनादि व्यापार शरीर रक्षार्थ हैं और जब तक शरीर है तब तक अवश्य कर्तव्य है । इनको जो छोड़ना हो तो विष खाके एक साथही न मर जाना । हां तदीयों को उन भोजनादि व्यापार की चिन्ता करनी अवश्यही नहीं चाहिए और जो कर्मोंका कहो तो कर्मों का त्याग अनन्यता की पुष्टि के हेतु है, क्योंकि बिना निःसाधन हुए मनुष्य अनन्य नहीं होता । इस से यह सिद्ध हुआ कि जब तक निश्चय न हो तब तक लोक और बेद दोनो मानना परन्तु जब निश्चय दृढ़ हो जाय और कामनाओं की निवृत्ति हो जाय तब लोक और बेद दोनों छोड़ कर केवल "कृष्णएव गतिर्मम" यह उच्चा-रण करना । श्री विष्णुस्वामी मत के बीजधारक श्री बिल्व मंगलाचार्य ने भी यही कहा है ।

"संध्याबंदन भद्रमस्तु भवते भोस्नान तुभ्यं नमः । भोदेवाः पितरश्च-तर्पण-बिधौ नाहं क्षमः क्षम्यतां ॥ यत्र क्वापि निषद्य यादवकुलोत्तंसस्य कंसद्विषः । स्मारंस्मारमघं हरामि तदलं मन्ये किमन्येन मे " ॥

द्वितीय अनुवाक समाप्त हुआ ।

---

* १४ कोष्ठ में दिया हुआ विशेष मूलवृत्ति में है ।

१५ ॐ तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामतभेदात् ।

उस (भक्ति) के लक्षण विविध मत भेद से वर्णन किए जाते हैं ॥ १५ ॥

इस सूत्र में एक शंका है कि सूत्र का लक्षण 'स्वल्पाक्षरमसंदिग्धम्' ऐसा है। सूत्रों में कोई बात व्यर्थ न होनी चाहिए यहां लक्षण तो आपही कहेंगे तो इस सूत्र की क्या आवश्यकता थी। ऐसा नहीं यह सूत्र इस अर्थ का प्रतिपादक नहीं है कि हम आगे उस के लक्षण कहेंगे बरन ऐसी प्रतिज्ञा है कि संसार में इस प्रेम को लोग अनेक मत से मानते हैं परंतु बास्तव में वह प्रेम नहीं है, प्रेम वही है जो शास्त्र में कहा जायगा, जैसा स्त्री पुरुष का कामनार्थ प्रेम वा अन्य किसी प्रकार की त्रिगुणात्मिका देव भक्ति प्रेम नहीं है। यद्यपि संसार में वह प्रेम कही जाती है और उनके अनेक प्रकार लोग लक्षण कहते हैं यही बात अग्रिम (इतऊर्ध्व) सूत्रों में सिद्ध करेंगे।

१६ ॐ पूजादिष्वनुरागइति पाराशर्य्यः ।

भगवत् पूजादिक में अनुराग रूपा भक्ति यह (पराशर्य) श्रीव्यासदेव का मत है ॥ १६ ॥ *

क्योंकि अनेक पुराणो में तथा जैमिनिसूत्र के भाष्य में बहुत कर्म बितान की प्रशंसा की है और पूजनादि केवल प्रेम के साधन स्वरूप हैं फल रूप नहीं श्री महा प्रभु जी ने भी सेवा निर्णय में आज्ञा किया है 'कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता' इत्यादि जीवों के आसुरावेश निवृत्यर्थ और मानसी सेवा सिद्ध्यर्थ बाह्य सेवा (पूजादि) हैं परंतु जब परम प्रेमावेश होता है तब मानसी सेवा भी छूट जाती है।

१७ ॐ कथादिष्विति गर्ग्गः ।

कथादि में अनुराग गर्गाचार्य का मत है। १७।

अर्थात् भगवत्कथा श्रवण को मुख्य मान कर कथा में अनुराग करना यह नारद जी का मत नहीं है प्रेम की उत्कण्ठा से जो भगवत्कथा में अनुराग हो वह ठीक है।

१८ ॐ आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः।

आतृमरति के अविरोध से अनुराग शांडिल्य का मत है। १८।

शांडिल्य भक्तिसूत्र के तृतीयान्हिक के तृतीय सूत्र में मत दिखाते हैं 'तामैश्वर्यपदां काश्यपः परत्वात्' 'आत्मैकपदां बादरायणः' 'उभयपदां शांडिल्यः शब्दोपपत्तिभ्यां'। काश्यप का द्वैत और बादरायण का अद्वैत दिखाकर आप द्वैताद्वैत अवलम्बन करते हैं। परन्तु द्वैत वा अद्वैत वा अद्वैत वा द्वैताद्वैत मत का अवलम्बन कर के भक्ति को अपने पूर्व मत के आग्रह से अपनी दीक्षा वा सम्प्रदाय के अनुसार बलात्कार से (भक्ति) चलाना नारद का मत नहीं। जब मत मतांतर के वाद में बुद्धि अभिनिविष्ट हो जायगी तो तीव्र प्रेमलक्षणा भक्ति में अन्य मनस्क होने से भेद पड़ जायगा इससे जिस भाव से निरोध हुआ हो उसी भाव से प्रेम में प्रवृत्त होनाही नारद का मत है। यदि हमारा यह भाव है कि ईश्वर एक हैं आनंदमय है हम उसके दासानुदास हैं हम से उससे कोई संबंध नहीं तो उसी भाव से भक्ति करनी. और जो सर्व भाव हो तो सर्व भाव से भक्ति करनी. द्वैताद्वैत भाव पर चित्त आरूढ़ हो तो वैसी भाव से उपासना करनी अर्थात् जीव ईश्वर के भेदाभेद के झगड़े में बुद्धि फसा कर प्रेम में बाधा नहीं डालनी। वही वही बात अगले सूत्र से सिद्ध करते हैं।

१९ ॐ नारदस्तुदतर्प्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।

नारद जी तो सर्व कर्म श्री हरि में अर्पण करना और श्री हरि की विस्मृति होने में परम व्याकुल होना यही भक्ति का लक्षण कहते हैं। १९। *

---

* 'परन्तु नारद तो भगवान में सब आचारों का अर्पण करदेना और भगवद्वियोग वा पूर्व्व संयोग वा लीला के क्षण मात्र भी भूलने में परम व्याकुल होने को भक्ति कहते हैं॥ १९॥' यह मूल वृत्ति में अर्थ है।

कर्म दो प्रकार के हैं, लौकिक, और पारलौकिक प्रेमियों के दोनों कर्म यहां लिखते हैं, पारलौकिक में भक्तोंको एतावन्मात्र कर्तव्य हैं कि अपने सब आचरणों को भगवान में अर्पण करना. और लौकिक में इतना कर्तव्य है कि जब भगवद्वियोगजनित परमानन्द का हृदय से तनिक भी विस्मरण हो तब परम व्याकुलताहोनी. तो अलौकिक कर्म तो तत्समर्पण से निबृत्त हुए लौकिक में जब व्याकुलता का उदय होगा तो आपही सब काम छुट जांयगें इस से लौकिक और पारलौकिक दोनों कर्मों की प्रवृत्ति से अलग होकर अनवच्छिन्न तैजसधारवत् सर्वक्षण भगवद्भक्ति में मग्न रहना, सर्वदा लीला का अनुभव करना, सर्वदा बियोग का अनुभव करना. किसी काम में लगे हों परन्तु चित्त उधरही रखना, जो वह ध्यान तनिक भी भूले तो एक संग व्याकुल होजाना यही भक्ति का लक्षण है।

२० ॐ अस्त्येवमेवं ।

ठीक ऐसाही है ॥ २० ॥ *

पूर्व कथित भक्ति लक्षण को इस सूत्र से अन्यस्थान में स्वकथित वा पर कथित अनेक विधियों के निरास पूर्वक मुक्त कण्ठ से प्रतिज्ञा स्वरूप स्थापन करते हैं। लोक में भी चाल है कि जो बात दो वेर कहते हैं उस पर अपनी पूर्ण दृढ़ता दिखाते हैं इस भाव से यहां भी यह सूत्र कहा है अथात् अब इसमें किसी शंका का अवकाश नहीं।

२१ ॐ यथाव्रजगोपिकानां ।

जैसा वृज की गोपियों का (प्रेम) है ॥ २१ ॥ *

लक्षण कहके उदाहरण में सब प्रेमियों की शिरोमणि स्वरूप श्री गोपीजन का नाम लेते हैं अथात् प्रेम का उदाहरण जैसा श्री गोपीजन नें दिखाया वैसा और कौन दिखावेगा। हई है लोक वेदकी कठिनलोह शृङ्खला कच्चे सूतसी और कौन तोड़ सकता है. जिन के भगवान भी सर्वदा ऋणी हैं उनकी महिमा कौन कह सकता है. श्रीमुखसे कहा है "नपारयेऽहंनिरवद्य संयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषा-

---

* २० है भी ऐसा ही ॥

* २१ जैसा व्रज के श्रीगोपीजनों को है ॥

पि वः। यामाभजन्दुर्जरगेहशृङ्खलां संवृश्च्यतद्वः प्रतियातु साधुना"। भगवान् श्रीगोपीजन से गले में पीतांबर डाल कर और हाथ जोड़ कर निवेदन करते हैं हे श्री व्रजदेवियो मैं जो देवताओं की आयुष्य धारण करूं और उस अनेक कल्प की आयुष से आप लोगों में से एक का भी प्रत्युपकार किया चाहूं तो न कर सकूंगा। क्योंकि महादुर्जर घर की शृङ्खला आप लोगों के सिवाय और कौन तोड़ सकता है। अतएव मैं आप लोंगो का सदा ऋणी हूं। तो भगवान् का यह श्रीमुख वाक्य उन श्रीगोपीजनके प्रति जिन ने भगवान् के श्रीमुख कहे हुए रास प्रसंग के दश श्लोकात्मक मर्यादा स्थापन के वाक्यों को तृण सा भी नहीं माना कुछ आश्चर्य नहीं है। एक तो साधारण शास्त्र के वाक्य माननीय हैं दूसरे उस में भी भगवद्वाक्य तीसरे जब भगवान् प्रत्यक्ष अपने मुखारविन्द से आज्ञा करै तो ऐसा कौन होगा जो न मानेगा। पर ऐसे श्री गोपी जन हीं हैं कि प्रेम मार्ग के विरुद्ध भगवद्वाक्य को भी न माना।

भगवान ने जब परम भागवत उद्धवजी को भक्ति का उपदेश किया है वहां कहा है "रामेण सार्धं मथुरां प्रणीते श्वाफल्कि मानय्यनुरक्तचित्ताः। विगाढभावेन नमे वियोगतीव्राधयोन्यं ददृशुः सुखाय॥ तास्ताः क्षपाः प्रेष्ठतमेन नीता मयैव वृन्दावनगोचरेण। क्षणार्द्धवृत्ताः पुनरंग तासां हीना मया कल्पसमा बभूवुः॥ तानाविदन्मय्यनुषंगबद्धधियः स्वमात्मानमदस्तथेदं। यथासमाधौमुनयोऽब्धितोये नच-प्रविष्टाइव नामरूपे॥" ब्रह्मा ने भी कहा है "षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं मयापुरा। नन्दगोप व्रजस्त्रीणां पादरेणूपलब्धये॥ अहोभाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसां। यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्मसनातनं"॥

जब उद्धव जी को भगवान् व्रज बिदा करने लगे हैं वहां भी श्री गोपीजन का स्वरूप अपने श्री मुख से उद्धव जी को समझाया है. "तामन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः। ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थेतान्बिभर्म्यहं॥ मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठे दूरस्थेगोकुलस्त्रियः स्मरंत्योंग विमुह्यन्ति विरहौत्कंठ्यविह्वलाः॥ धारयंति कृच्छेण प्रायःप्राणान् कथंचन। प्रत्यागमनसंदेशैर्बल्लव्योमे मदात्मिकाः।" हे उद्धव उन गोपीजन ने मेरे में मन लगाया है मैंही उनका प्राण हूं मेरे हेतु उनने अपने सब देह के व्यवहार छोड़ दिये हैं और जो लोग मेरे अर्थ लोक और

को छोड़ देते हैं उनको मैं धारण करता हूं वे गोपियां उन के परम प्यारों से प्यारे मेरे दूर रहने से जब मेरा स्मरण करती हैं तो विरह की उत्कण्ठा से व्याकुल होकर अपने शरीर की सुध भी भूल जाती हैं, बड़ी कठिनता से और बड़े दुःख से मेरे बिना किसी रीति प्राण धारण करती हैं, मेरे आने के संदेसे सुन कर जीती हैं. उन गोपियों का आत्मा मैं हूं और वे मेरी हैं. इत्यादि ॥ जिन श्री गोपीजन से परम भागवत उद्धव जी ने भी कहा "अहो यूयं स्म पूर्णार्थाभवत्योलोकपूजिताः ॥ वासुदेवे भगवति यासामर्त्यर्पितं मनः ॥ दानव्रततपोयोग जपस्वाध्यायसंयमैः श्रेयोभि र्विविधैश्चान्यैः कृष्णेभक्तिर्हिसाध्यते । भगवत्युत्तमश्लोके भवतीभिरनुत्तमाः । भक्तिःप्रवर्तितादिष्ट्यामुनीनामपिदुर्लभा । दिष्ट्या पुत्रान् पतीन्देहान् स्वजनान् भवनानि च । हित्वावृणायुर्यूयंयत् कृष्णाख्यंपरमंपदम् । सर्वात्मभावोधिकृतोभवतीनामधोक्षजे । विरहेण महाभागा महान्मेनुग्रहःकृतः ॥" इत्यादि, और जब श्री उद्धव जी ने अपने ज्ञान कथनानंतर श्रीगोपीजन का स्वरूप जाना है तब यही मांगा है कि हम श्री बृन्दाबन में गुल्मलता हों, यथा "नायं श्रियोंगजनितांतरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगंधरुचां कुतोन्यः । रासोत्सवेऽस्यभुजदंडगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगात् व्रजवल्लवीनाम् ॥ आसामहोचरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपिगुल्मलतौषधीनां । यादुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्यां ॥ यावै श्रियार्चितमजादिभि राप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनिरासगोष्ठ्यां ॥ कृष्णस्य तद्भगवश्चरणारविंदं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापं ॥" श्रीमहाप्रभु जी ने संन्यास निर्णय ग्रंथमें आज्ञा किया है कि श्री गोपीजन प्रेम मार्ग की गुरू हैं, तथाच निरोध लक्षण ग्रन्थ में आप ने श्रीगोपीजन तथा व्रज के गोपों का विरहानुभव प्राप्त होने की उत्कण्ठा दिखायी है । "यच्च दुःखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले । गोपिकानां तु यद्दुःखंतद्दुःखंस्यान्मम क्वचित् ॥ गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनां । यत्सुखंसमभूत्तन्मे भगवान् किं विधास्यति ॥ उद्धवागमने जातउत्सवः सुमहान्यथा । बृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित् ॥" इत्यादि । और "गोपी प्रेमकी ध्वजा । जिन घनश्याम किए अपने बस उरधरि श्यामभुजा" "गोपीपदपंकजपरागकीजे महाराजरजकीजे आपुनेईगोकुला नगर को ।" "येहरिरसओपीगोपीसबतियतेंन्यारी । कमलनयन गोविन्दचंदकी प्राणपियारी । निर्मत्सरजेसन्ततिनकीचूडामनिगोपी । जेऐसेमर्यादमेटिमोहनगुनगावें। क्योंनहिपरमानन्द प्रेमभक्तिसुखपावें ।" "अहोविधिनातोपैअचरापसारिमांगो जनम

जनमदीजोयाहीब्रजब्रासिवो । अहीरकीजातिसमीपनंदघर घरीघरीघनश्यामहेरिहेरि हंसिवो ॥" " बलिगुरुतज्यौकंतब्रजवनितन भईजगमंगलकारी ॥" इत्यादि श्रीसूरदासादिक परम अनुरागियों ने भाषा में भी श्रीगोपीजन का पवित्र यश वर्णन किया है । परमअंतरंग श्री नागरीदास जी भी गाते हैं ॥ जयतिललितादिदेवीयब्रजश्रुतिऋचा कृष्णापियकेलिआधीरअंगी । युगुलरसमत्तआनन्दमयरूपानिधि सकलसुखसमयकी छांहसंगी ॥ गौरमुखहिमकिरणकीजुकिरणावली श्रवतमधुगानहियपियतरंगी । नागरीसकलसंकेतआकारिणी गनतगुनगननिमतहोतिपंगी ॥" भवतु ! इन श्रीगोपीजन के अगणनीय गुण कहां तक लिखैं रसिक लोग स्वतः अनुभवकरेंगे।

२२ ॐ न तत्रापि माहात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः ।

यहां भी माहात्म्य ज्ञान विस्मृति का अपवाद नहीं ।२२। *

जहां प्रेम है वहां माहात्म्य ज्ञान नहीं जहां माहात्म्य ज्ञान है वहां प्रेम नहीं परन्तु श्री गोपीजन में दोनों बातें थीं क्योंकि उनको भगवत् स्वरूप का ज्ञान नहीं था यह शंका नहीं हो सकती । "अस्त्वेवमेतदुपदेशपदेत्वयीशेप्रेष्ठोभवांस्तनुभृतांकिलबंधुरात्मा" ॥ 'व्यक्तंभवान्व्रजभयार्तिहरोभिजातो' "नखलुगोपिकानंदनोभवानखिलदेहिनामंतरात्मदृक्" ॥ इत्यादि श्री गोपीजन के वाक्यों से उनको माहात्म्य ज्ञान सिद्ध है ।

२३ ॐ तद्विहीनं जाराणामिव ।

उसके बिना जारों के समान है । २३ । *

अर्थात् जहां माहात्म्य ज्ञान नहीं है वहां की प्रीति जारों की सी होती है । यद्यपि भगवान में ज्ञान या अज्ञान से की हुई प्रीति निष्फल नहीं जाती तत्रापि यह लीला जहां पूर्ण प्रादुर्भाव है वहीं हैं परन्तु माहात्म्य ज्ञान पूर्वक भक्ति में यह विशेषता है कि एक प्रस्तर में भी ईश्वर बुद्ध्या सत्य प्रेम करने से फल दायिनी होती है ।

---

* २२ क्योंकि उनके ऐसे कठिन प्रेम में भी महात्म ज्ञान भूलजाने का अपवाद नहीं है ।

* २३ क्योंकि बिना माहात्म्य ज्ञानके प्रेम जारों कासा होता है ।

२४ ॐ नास्त्येवतस्मिन्तत्सुखसुखित्वं ।

उस में प्यारे के सुख से सुखी होना नहीं ही है।२४।*

क्योंकि जारों की प्रीति अपनी कामना के अर्थ है तो उस मे तत्सुखसुखित्व कहां से आवेगा। इति।

तीसरा अनुवाक समाप्त हुआ।

---

२५ ॐ सा तु कर्मज्ञानयोगेभ्यो प्यधिकतरा।

वह (भक्ति) तो कर्म, ज्ञान और योग से भी अधिक है।

"तपस्विभ्योधिकोयोगी ज्ञानिभ्योपि मतोधिकः कर्मिभ्यश्चाधिकोयोगी तस्मा-द्योगी भवार्जुन ॥ योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां समे युक्ततमोमतः" ॥ इन वाक्यों से भगवान श्री मुख से ज्ञान और कर्म की अपेक्षा योग को अधिक कह कर अपने भक्त को उससे भी अधिक कहते हैं और भक्ति ऐसी है कि भगवान मुक्ति देते हैं परन्तु भक्ति नहीं तथाहि "मुक्तिं-ददातिकर्हिचित्स्मनभक्ति योगं"। तथा "न साधयति मां योगो नो सांख्यधर्म-उद्धव। न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथाभक्तिर्ममोर्जिता ॥ भक्त्याहमेकयाग्राह्यःश्रद्धया-त्मप्रियःसताम्। भक्तिःपुनातिमन्निष्टा श्वपाकानपि संभवात्" ॥ और भक्ति में यह विशेष है कि कर्म ज्ञान और योग इन में अधिकारी अनधिकारी का बड़ा बिचार रहता है परन्तु इसमें किसी अधिकारी का काम नहीं श्री मुख वाक्य प्रमाण है "केवलेन हि भावेन गोप्योगावः खगामृगाः येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरंजसा ॥

२६ ॐ फलरूपत्वात्।

क्योंकि *(ये सब साधन और वह) फल रूप है।

---

* २४—क्योंकि उस में अपने प्रियतम के सुख से सुखी होना नहीं है।

ज्ञानाभिमानी लोग कहते हैं कि भक्ति का फल ज्ञान है ऐसा नहीं* क्योंकि श्री भगवद्गीता में कहा है "अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहं । विमुच्य निर्ममः शान्तोब्रह्मभूयायकल्पते ॥ ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा नशोचति नकांक्षति । समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिंलभतेपरां" ॥ हईं है संसार के सर्व प्रकार के साधन का फल केवल भगवत् कृपा है और वह बिना भक्ति सिद्ध न होगी तो दोनों प्रकार से भक्ति के बिना अन्य साधन व्यर्थ ही हुए।

२७ ॐ ईश्वरस्याप्यभिमानद्वेषित्वाद्दैन्यप्रियत्वाच्च ॥

ईश्वर को भी अभिमान से द्वेषित्व है और दैन्य प्रियत्व है ॥ २७ ॥

अर्थात् कर्म ज्ञान और योग में उनके साधकों को अपने अपने साधन का अभिमान होता है तो उन से भगवान प्रसन्न नहीं रहता, हईं है वह तो निराश्रयों का आश्रय, नि.साधनों का साधन, दीनों का बन्धु, पतितों का प्यारा, और सर्व प्रकार से हीनोंका सर्वस्व है। जिन लोगों को अपने साधनों का बल है उनको क्यों वह पूंछेगा। सच है, जो स्त्री अपने सौन्दर्य्य के और जारों के बल से धन कमा लेती है उसे पति क्यौं पूछेगा, जो बालक आप धनोंपार्जन में समर्थ है उसे माता पिता क्यौं भोजन देंगे, जो सेवक अपने गुण से अपना योग क्षेम चला लेतां है उसके स्वामी को क्या शोच है। विशेष कर ईश्वर से स्वामी को जिसको सर्वदा दीन ही प्यारा है, उसके सामने तो जब अनन्य होकर सब साधन छोड़कर उससे कहोगे "सर्वसाधनहीनस्य पराधीनस्य सर्वथा। पापापीनस्य दीनस्य कृष्णएवगतिर्मम" "हे नाथ ! मैं सब साधन से हीन हूं और संसार के पचड़े में मग्न हूं पापों से लदा हुआ हूं और परम दीन हूं अतएव हे नाथ ! हमारी तो तुमही गति हो क्यौंकि मैं और किसी के सामने मुंह दिखाने के योग्य नहीं रहा, वेद को कैसे मुंह दिखाऊं, उनके वाक्यानुसार सर्वकर्मानर्ह और पतित हो रहा हूं, लोक को भी नहीं मुंह दिखा सकता क्यौंकि

---

* 'भक्ति ज्ञान से क्यों बड़ी है' लेख देखो

लोक में सब से मुख्य रक्षणीय लज्जाका त्याग कर चुका हूं और लोक के साधनों से विहीन हूं, हमारा तो और कोई शरण नहीं, महा निरवलम्ब हूं, कोई हाथ पकड़ने वाला नहीं, अथाह समुद्र में डूबता हूं, अब इस समय तुम्हारे सिवाय और कोई गति नहीं, मेरी तो तुमही गति ही" इत्यादि। तभी वह तुम्हारी ओर ध्यान करेगा, ऐसा श्रीमुख से भी कहा है "सर्वधर्मान्परित्यज मामेकंशरणंव्रज। अहंत्वां-सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामिमाशुचः" ॥ सब धर्मों को छोड़ कर एक मेरी शरण आव मैं तुझे सब पातकों से दूर करूंगा शोच मत कर, और यह वाक्य भी कब कहा है जब सब गीता का उपदेश कर चुके हैं तब इसको ठीक देने के भांति कहा है।

और आप अपने मुख से अपने इस वाक्य का आग्रह दिखाते हैं "सर्व-गुह्यतमंभूयः श्रृणुमेपरमंवचः। इष्टोसिमेदृढ़मतिस्ततो वक्ष्यामि तेहितम्" और भी उद्धव जी प्रति श्री भगवद्वाक्य है "अकिंचनस्यदांतस्य शांतस्यसमचेतसः। मयासं-तुष्टमनसः सर्वाः सुखमयादिशः" ॥ "अज्ञायैवगुणान्दोषान् मयादिष्टानपिस्वकान्। धर्मान्संत्यज्ययःसर्वान् मांभजेतससत्तमः" ॥ तस्मात् त्वमुद्धवोत्सृज्य चोदनां प्रति-चोदनां। प्रवृत्तं च निवृत्तं च श्रोतव्यं श्रुतमेवच ॥ मामेकमेवशरणमात्मानंसर्व-देहिनां। याहिसर्वात्मभावेन मयास्याःह्यकुतोभयः ॥ नसाधयतिमांयोगो नसांख्यं धर्मउद्धव। नस्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथाभक्तिर्ममोर्जिता ॥ भक्त्याहमेकयाग्राह्यः श्रद्ध-यात्माप्रियःसताम्। भक्तिःपुनातिमन्निष्ठा श्वपाकमपिसंभवात् ॥ धर्मःसत्यदयोपेतो विद्यावातपसान्विता। मद्भक्त्यापेतमात्मानं नसम्यक्प्रपुनातिहि। कथं विना-रोमहर्षं द्रवताचेतसाविना ॥ विनानन्दाश्रुकलया शुध्येद्भक्त्याविनाशयः। वाग्गद्गदा द्रवतेयस्यचित्तंरुदत्यभीक्ष्णंहसति क्वचिद्वा ॥ विलज्जउद्गायतिनृत्यतेच मद्भक्तियुक्तो भुवनंपुनाति"।

तथा—नाहंवेदैर्नतपसा नदानेननचेज्यया। शक्यएवंविधोद्रष्टुं दृष्टवानसिमांय-था ॥ भक्त्याहमेकयाग्राह्यः अहमेवंविधोर्जुन। ज्ञातुंद्रष्टुं चतत्वेन प्रवेष्टुं चपरंतप ॥ इत्यादि ॥ इन वाक्यों को छोड़ कर भक्तों के दोनों लोक साधन के लिए उस की दृढ़ प्रतिज्ञा है "कौंतेयप्रतिजानीहि नमेभक्तःप्रणश्यति" "नरकादुद्धराम्यहं" "तान्विभर्म्यहं" "सोयंमेव्रतआहितः" योग क्षेमंवहाम्यहं" "तेषामहंसमुद्धर्तामृत्युसंसा-रसागरात्" इत्यादि।

२८ ॐ तस्याःज्ञानमेवसाधनमित्येके ।

उसका (भक्ति का) साधन ज्ञान ही है यह किसी (आचार्य) का मत है ।

ऐसा नहीं हो सकता । गृध्र, अजामिल, गजेंद्र इत्यादि को किसने ज्ञान दिया है "केवलेनहिभावेन गोप्योगावःखगाःमृगाः" येन्येमूढ़धियोनागाः सिद्धामामीयुरञ्जसा " भक्ति का साधन तो अपने चित्त का अंकुर और उनकी कृपाही है ज्ञान बिचारा क्या साधेगा ।

२९ ॐ अन्योन्याश्रयत्वमित्यन्ये ।

दूसरोंका मत है कि भक्ति और ज्ञानसे परस्पर आश्रयत्व है ।

यह भी नहीं होसक्ता, जब मनुष्य किसी की भक्ति वा प्रीति कर लेगा तब उसके ज्ञान में क्या प्रवृत्त होगा पानी पीके जात नहीं पूछी जाती ।

३० ॐ स्वयंफलरूपतेतिब्रह्मकुमाराः ।

सनत्कुमारादि और नारद जी का मत है कि भक्ति स्वयं फल रूपा है ।

हई है, पहले भी कह आये हैं ।

३१ ॐ राजगृहभोजनादिषुदृष्टत्वात् ।

राजा का घर (दरबार) और भोजनादि में ऐसा ही देखा गया है ॥ ३१ ॥

पूर्व कथित फल रूपता का उदाहरण दिखाते हैं ।

३२ ॐ नतेनराजपरितोषोक्षुधाशान्तिर्वा ।

न उससे राजा का परितोष होगा न क्षुधा मिटेगी । *

ज्ञान के फल रूप होने में दोष दिखाते हैं कि एक मनुष्य को किसी

---

* ३२ क्योंकि केवल राजा के जान लेनेही से न राजा का परितोष होता है न केवल भोजन की वस्तुके ज्ञानसे भूख मिटती है (किन्तु उनके सेवन से)

राजा का स्वरूप ज्ञान बहुत अच्छा है पर इससे क्या ! वह राजा विना अपनी भक्ति कियेही उसे कुछ देगा वा कुछ भोजन रक्खा है हम को उसके स्वरूप का पूर्ण ज्ञान है कि इसमें पूरी है और वह आटा घी जल और अग्नि के संयोग से बनी है पर क्या इस ज्ञान ही से भूख मिट जायगी ! कदापि नहीं । वैसाही भगवान को केवल जानकर कभी सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि वह अपने स्वरूपज्ञों पर किस नाते दत्त चित्त होगा ! अतएव अगले सूत्र में फिर से आग्रह दिखाते हैं ।

३३ ॐ तस्मात्सैवग्राह्यामुमुक्षुभिः ।

इस कारण मोक्ष की इच्छा करनेवाले उसी (भक्ति) का ग्रहण करें ।

जो अपना कल्याण करना चाहे तो इस सूत्र को कान खोल कर सुने और विश्वास करे ।

चौथा अनुवाक समाप्त हुआ ।

३४ ॐ तस्यास्साधनानिगायन्त्याचार्याः ।

उस (भक्ति) के साधन आचार्य्य कहते हैं ।

पूर्वोक्त सूत्रों में भक्तिही मुख्य है ऐसा कह अब उसके साधन दिखाते हैं ।

३५ ॐ तत्तुविषयत्यागात्सङ्गत्यागाच्च ।

वह (भक्तिसाधन) *तो विषय त्याग और संगत्यागसे होता है ।

जो कहो कि हम विषय और संग में लगे हुए भी सिद्ध हो जायंगे तो यह नहीं हो सक्ता क्योंकि श्री महाप्रभु जी ने अपने ग्रंथ बालबोध में " जीवाः स्वभावतोदुष्टाः " इस वाक्य से जीव को स्वभावतः दुष्ट कहा है तो जीव को आसुरावेश होने में कुछ विलम्ब नहीं लगता । श्रीहरिराय जी ने अपने ग्रंथ काम दोष निरूपण में इस विषय की कैसी निन्दा की है, आप लिखते हैं " दोषेषु

* पूर्व मुद्रित सूत्र वृत्ति में तच्छब्द से भक्ति मानकर विषय त्याग वा संग त्याग से वह सिद्ध होती है लिखा है ।

प्रथमः कामो विविच्य विनिरूप्यते । यस्मिन्नुत्पद्यते तस्य नाशकः सर्वथामतः ॥ विषयावेशहेतुत्वाद्विक्षेपोत्पत्तिकारणं । रजोगुणसमुत्पन्नो रजःप्रक्षेपकोमुखे ॥ ब्रह्मावेशविरोधी च सद्बुद्धेर्बाधकोमतः । सत्कर्मनाशकः सर्वप्राकृतासक्तिसाधकः ॥ चित्ताशुद्धिनिदानत्वाच्चिदुत्पत्तौचबाधकः । भक्तिमार्गमहाद्वेष्टा वैराग्याभावसाधनात् ॥ सर्वत्रापरितोषश्चानेन लोभसमुद्भवात् । यथाकथंचित्सांमुख्येंद्रियवैमुख्यकारकः ॥ कामलोभौहरिप्राप्तिप्रतिबंधकपर्वतौ । तावुल्लंघ्य नशक्नोति गंतुं कृष्णांतिकं जनः ॥ संसारमोहहेतुत्वान्मनोदूषणसाधनम् । अतः सेवाविरोधी च यतः सा मानसीमता ॥ निरोधस्यमहाञ्छत्रु रन्यस्फूर्तिकरो यतः । गुणगानसपन्नोपि नरोचंते गुणायतः ॥ वैराग्यसाधकाःसर्वेकामिनस्तेकथंप्रियाः । अतएवहिदृश्यन्ते गुणश्रवणवैरिणः ॥ क्रोधःस्वकार्यकरणाल्लोभःप्राप्त्यापिशाम्यति । घृतहोमेवन्हिरिवकामोभोगेनवर्द्धते ॥ कामेननाशितमतिः प्रतिषिद्धे प्रवर्तते । अगम्यागमने चौर्य्ये तथैवाभक्ष्यभक्षणे ॥ यतउत्पद्यते क्रोधो महद्द्रोहसमुद्भवः । लोभोपिजायतेतस्मात्सचार्थविषयेभवेत् ॥ सोर्थःपञ्चदशानर्थमूलंतत्रप्रवर्तते । कामेनैवहिकार्पण्यं कामिनीषु सतांमतं । प्रार्थयन्तियतस्तुच्छा प्रवेश्यबदनेकरं " इत्यादि काम दोष पर आपने एक ग्रंथही बनाया है तो काम मुख्य दोष है इसमें कोई संदेह नहीं वरञ्च श्री गीता जी में कामही के छुड़ाने के आग्रह से सुखपूर्वक भोजनादि का भी निषेध किया है श्रीमुख वाक्य 'इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति निराहारस्यदेहिनः । रसवर्जंरसोप्यस्यपरंदृष्ट्वानिवर्तते' । इससे भक्ति के सब साधनों में मुख्य विषयों का त्याग है संग त्याग के दोष ४३। ४४ । ४९ सूत्रों में दिखावेंगे ॥

३६ ॐ अव्यावृतभजनात् ।

सतत (निरंतर) भजन से

निरन्तर शब्द यहां इस हेतु दिया है कि क्षण क्षण में जीव को आसुरावेश होता है और रजोगुण सतोगुण की तरंगें उठा करती हैं तो उसकी निवृत्ति के हेतु निरन्तर भजन करे । जिस क्षण में नामोच्चारण का व्यवधान होगा उसी क्षण आसुरावेश होगा अतएव भगवान श्री श्रीबल्लभाचार्य ने आज्ञा किया है "तस्मात्सर्वात्मनानित्यं श्रीकृष्णः शरणं मम । वदद्भिरेवसततं स्थातव्यमिति मेमितिः" अपने भक्तिवर्द्धिनी ग्रंथ में भी श्रीआचार्यजी ने 'आव्यावृतोभजेत्कृष्णं पूजयाश्रवणादिभिः'

इत्यादि लिखा है, भोजनादिक व्यवहार की भांति कुछ नित्य भजन भी करलेना वा जहां सब काम करते हैं वहां एक घण्टा भर यह भी सही इत्यादि उपेक्षा वा साधारण व्यवहार पूर्वक भजन का निषेध इस सूत्र से किया, जो कहो कि संसार के और कोई काम न करें सो यह नहीं कहते बरञ्च जब तुम आवश्यक कार्यों से छूटो तब और कोई व्यर्थ काम करने के बदले निरन्तर भजन करो, जैसा जितने क्षण खाते हो उतनी देर तो निःसंदेह तुम कुछ नहीं कह सकते पर जैसे ही मुंह धो चुको भगवन्नामोच्चारण प्रारम्भ करो।

३७ ॐ लोकेपि भगवद्गुणश्रवणकीर्तनात्।

लोक में भी भगवान के गुणों के श्रवण और कीर्तन से ३७

"लोकेपि" अर्थात् जब तक अव्यावृत्त भजन की सिद्धि न हो और लोक के व्यवहार में चित्त निरा मग्न हो तब तक भगवान के गुण कीर्तन करके और श्रवण करके निरन्तर भजन का अभ्यास करे क्योंकि कोरे नामोच्चारण से वा ध्यान करने से भजन सुनने या गाने में सर्वसाधारण का चित्त विशेष लग सकता है। श्रीमहा प्रभुजी लिखते हैं "यथाभक्तिःप्रबृद्धास्यात्तथोपायोनिरूप्यते। बीजभावेदृढेतुस्यात्त्यागाच्छ्रवणकीर्तनत् ॥ बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहेस्थित्वा स्वधर्मतः। अव्यावृतोभजेत्कृष्णं पूजयाश्रवणादिभिः ॥ व्यावृत्तोपिहरौचित्तं श्रवणादौयतेत्सदा। ततःप्रेमतथासक्ति र्व्यसनञ्चयदा भवेत्" अर्थात् जो चित्त भक्ति में न रंगा हो तो श्रवणादिक में लगावे और जब उस में कुछ प्रेम और आसक्ति होगी और श्रवणादिक का व्यसन हो जायगा तब आपही भक्ति का बीज दृढ़ हो जायगा यद्यपि भक्ति के अधिकारी सब लोग नहीं हैं पर श्रवण कीर्तनादिक के अभ्यास से सब हो जाते हैं क्योंकि कीर्तन के अधिकारी मुक्त मुमुक्षु और विषयी तीनो हैं। यही श्रीपरमभागवत श्रवणाधिकारी राजा पराक्षीत ने कहा है "निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोभिरामात्। क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात्।"

३८ ॐ मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा।

(उस भक्ति का) मुख्य साधन तो महानुभावों की कृपा है, वा भगवान की कृपा का लेश ॥ ३८ ॥ *

ऐसाही है परम भागवत जड़भरतजी ने रहूगण को उपदेश किया है "रहूगणैतत्तपसानयाति नचेज्ययानिर्वपणाद्गृहाद्वा । नच्छन्दसानैवजलाग्निसूर्यैर्विनामहत्पादरजोभिषेकात् ॥" हे रहूगण यह (सिद्धि) तप से नहीं होती और न यागादि कर्मो से न घर छोड़ के जोगी बनने से न वेदों से न जल से अर्थात् स्नान संध्या तर्पणादि से न अग्नि से अर्थात् पञ्चाग्नि साधन वा अग्निहोत्र से न सुर्य से अर्थात् सूर्योपस्थान वा गीष्मताप सेवनादि से। बिना महानुभावो के पदरज में नहाये और किसी से यह नहीं हो सकता यही श्री मुख से भी कहा है "नह्यम्मयानितीर्थानि नदेवामृच्छिलामया: । तेपुनंत्युरुकालेनदर्शनादेवसाधव: ॥" हे अक्रूर ! जिस को जल मय तीर्थ (गङ्गादि) और मृनय और शिलामय देव पवित्र नहीं करते वा बहुत काल से करते हैं उसको साधु लोग केवल दर्शन हीं से तत्काल पुनीत करते हैं ।

वरञ्च श्रीमद्भागवत पञ्चमस्कन्ध में श्रीमत्परम भागवत प्रह्लाद जी ने कहा है "मागारदारात्मजवित्तबंधुषु संगोयदिस्याद्भगवत्प्रियेषुन: य: प्राणवृत्यापरितुष्टआत्मवान् सिद्ध्यत्यदूरान्नतथेंद्रियाप्रिय: ॥ यत्संगलब्धंनिजवीर्यवैभवं तीर्थमुहु:संस्पृशतांहि मानसं । हरत्यजोंत: श्रुतिभिर्गतोंगजं कोवै नसेवेतमुकुन्दविक्रमं"

देवीपुराण † नवमस्कन्ध के षष्ठाध्याय में गङ्गा जी से भगवान का वाक्य है "मन्मंत्रोपासकानांच सतांस्नानावगाहनात् । युष्माकंमोक्षणं पापात् दर्शनात्स्पर्शनात्तथा ॥ पृथिव्यांयानितीर्थानि संत्यसंख्यानिसुन्दरि । भविष्यन्तिचपुतानिमद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ मन्मन्त्रोपासकाभक्ताविश्रमन्तिचभारते । पूतांकर्तुंतारितुञ्च सुपवित्रांवसुन्धरां ॥ मद्भक्तायत्रतिष्ठन्तिपादंप्रक्षाल्यन्तिच। तत्स्थानन्तुमहातीर्थं सुपवित्रंभवेत्ध्रुवं ॥ स्त्रीघ्नोगोघ्न:कृतघ्नश्चब्रह्मघ्नोगुरुतल्पग: । जीवन्मुक्तोभवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥ एकादशीविहीनश्चसंध्याहीनोतिनास्तिक: । नरघातीभवेत् पूतोमद्भक्तस्पर्श-

---

* ३८ परन्तु मुख्य करके तो महात्मा लोगों की कृपा ही से होती है वा भगवान के कृपा लेश से।

† देवी पुराणही को देवी भागवत कहते हैं क्योंकि पुराणों में जहां उपपुराणों को गिना है वहां कहीं "भागवत" वा "देवीपुराण" ऐसा शब्द है।

दर्शनात् ॥ असिजीवीमसीजीवीपाचकोग्रामयाचकः। वृषवाहोभवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्श० ॥ विश्वासघातीमित्रघ्नो मिथ्यासाक्ष्यस्यदायकः। स्थाप्यहारीभवेत्पूतो मद्भक्तस्पर्शदर्श० ॥ अत्युग्रवाग्दूषकश्च जारकःपुंश्चलीपतिः। पूतश्चपुंश्चलीपुत्रो मद्भक्त० ॥ शूद्राणांसूपकारश्चदेवलोग्रामयाचकः। अदीक्षितोभवेत्पूतो मद्भक्त० ॥ पितरंमातरम्भार्यां भ्रातरंतनयंसुतां। गुरोःकुलंचभगिनीं चक्षुर्हीनंचबान्धवं ॥ श्वश्रूंचश्वशुरंश्चापियानपुष्णातिसुन्दरि। समहापातकीपूतोमद्भक्तस्पर्श दर्शनात् ॥ अश्वत्थनाशकश्चैव मद्भक्तनिन्दकस्तथा। शूद्रान्नभोजीविप्रश्च पूतोमद्भक्तदर्शनात् ॥ देवद्रव्यापहारीच विप्रद्रव्यापहारकः। लाक्षालोहरसानांच विक्रेतादुहितुस्तथा ॥ महापातकिनश्चैव शूद्राणांशवदाहकः। भवेयुरेतेपूताश्च मद्भक्तस्पर्शदर्शनात् ॥" तथा देवी का वाक्य "पुनन्तिसर्वतीर्थानि येषांस्नानावगाहनात्। येषांचपादरजसा पूतापादोदकान्मही ॥ येषांसंदर्शनंस्पर्शंयेवावांछन्तिभारते। सर्वेषांपरमोलाभो वैष्णवानां समागमः ॥ नह्यम्मयानितीर्थानि नदेवामृच्छिलामयाः। तेपुनंत्यपिकालेन विष्णुभक्ताःक्षणादहो" फिर भगवद्वाक्य "पुरुषाणांशतंपूर्वं तथातज्जन्ममात्रतः। स्वर्गस्थंनरकस्थंवा मुक्तिमाप्नोतितत्क्षणात् ॥ यैःकैश्चियत्रवाजन्म लब्धंयेपुचजन्तुषु। जीवन्मुक्तास्तुतेपूता यान्तिकालेहरेःपदं ॥ मद्भक्तियुक्तोत्यर्थश्चसमुक्तःसद्गुणान्वितः। मद्गुणाधीनवृत्तिर्यः कथाविष्टश्चसन्ततं ॥ मद्गुणश्रुतमात्रेणसानन्दः पुलकान्वितः। सगद्गदःसाश्रुनेत्रः स्वात्मविस्मृतएवच ॥ नवाञ्छतिसुखंमुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयं ॥ ब्रह्मत्वममरत्वंवा तद्वाञ्छाममसेवने ॥ इंद्रत्वंचमनुत्वंच ब्रह्मत्वंचसुदुर्लभं ॥ स्वर्गराज्यादिभोगश्च स्वप्नेपिचनवाञ्छति ॥ भ्रमन्तिभारतेभक्ता स्तादृग्जन्मसुदुर्लभं। मद्गुणश्रवणश्राव्यगानैर्नित्यंमुदान्विताः ॥ तेयांतिचमहींपूत्वा नराःशीघ्रंममालयं। इत्येवं कथितंसर्वं पद्मेकुरुयथोचितं तदाज्ञयातास्तवकु र्हरिस्तस्थौ सुखासने।" तथाच सारसंग्रह में पराशर स्मृति "सहस्रवार्षिकोपूजा विष्णोर्भगवतो हरेः ॥ सकृद्भगवतार्चायाः कलांनार्हतिषोडशीं ॥" इत्यादि। बृहन्नारदीयपुराण "पूजनाद्विष्णुभक्तानां पुरुषार्थोस्तिनेतरः। तेषुतद्वेषतः किंचिन्नास्तिनाशनमात्मनः ॥" पद्मपुराण में महादेव जी का वाक्य "आराधनानांसर्वेषां विष्णोराराधनंपरं। तस्मात्परतरंदेवि तदीयानांच पूजनं ॥" श्रीमद्भागवत में श्री महादेव जी का वाक्य "नमेभागवतानांचप्रेयानन्योस्तिकर्हिचित्" इत्यादि पूर्वोक्त श्लोकों से तदीय जनों का माहात्म्य सिद्ध हुआ तो ऐसे तदीयों की कृपा से भक्ति मिले इसमें क्या आश्चर्य है वा भगवान ही की कृपा से होय क्योंकि

आप कभी २ भक्तिदान देते हैं " ददामिबुद्धियोगंतं येनमामुपयांतिते " परन्तु भगवान की कृपा से भक्तों की कृपा सुलभ है क्योंकि भगवान् भक्तिदान विशेष नहीं करते "मुक्तिंददामिकर्हिचित्स्मनभाक्तियोगं ॥" इत्यादि। अतएव इस सूत्र में महत्कृपा मुख्य करके भगवत्कृपा गौण किया है ॥

३९ ॐ महत्सङ्गस्तुदुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।

और महत्सङ्ग दुर्लभ, अगम्य, और अमोघ (सफल) है ॥३९॥*

ऐसाही है " क्षणार्द्धेनापितुलये न स्वर्गनापुनर्भवं। भगवत्सङ्गिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः " ॥ इत्यादि श्रीमद्भागवत में श्रीमहादेवजी का वाक्य है "अमोघसिद्धदर्शनं " इत्यादि स्मृति तथा श्रीमुख वाक्य "नरोधयति मां योगो नसांख्यं धर्मएवच। नस्वाध्यायस्तपस्त्यागो नेष्टापूर्तनदक्षिणा॥ व्रतानियज्ञश्छन्दांसि तीर्थानि नियमायमाः। यथावरुन्धेसत्सङ्गः सर्वसंगापहोहिमां ॥" और लोक में भी प्रसिद्ध है " सत्संगतिः कथय किंनकरोतिपुंसां " इत्यादि।

४० ॐ लभ्यतेपितत्कृपयैव।

महत्सङ्ग उसकी (भगवान्‌की) कृपा से ही मिलता है ॥४०॥

" यस्यभागवताःप्रीता स्तस्यप्रीतोहरिःस्वयं।" इत्यादि वाक्यों से सिद्ध है। तथा श्री महादेव जी ने भी कहा है " अथानघाघ्रेस्तवकीर्तितीर्थे योर्न्तर्हिःस्नातिविधूतपाप्मना। भूतेष्वनुक्रोशसुसत्वशीलिनां स्यात्सङ्गमोनुग्रहएवमस्तुच " ॥

४१ ॐ तस्मिन्तज्जने भेदाभावात्।

उसकी और उसके जन में भेद के अभाव से ॥४१॥*

श्रुति भी है। "यस्यदेवेपराभक्तिर्यथादेवेतथागुरौ" इत्यादि। "नमेभागवतानांच मुक्तिभेदोस्तिकर्हिचित् " इत्यादि, श्री मुख से कहा है। तथाच श्रीगोपीजन

---

* ३९ महात्माओं का संग दुर्लभ है क्योंकि उस संग में कोई जा नहीं सकता और जब उस संग में प्राप्त होता है तो खाली नहीं फिरता अर्थात् सत्संग का फल अवश्य होता है।

* ४१ क्योंकि भगवान में और उनके भक्तों में कुछ भेद नहीं है।

को " ता.मन्मनस्कामत्प्राणाः वल्लव्योमेमदात्मिका: " इत्यादि, श्रीमहादेवजी को " यस्त्वांद्वेष्टिसमांद्वेष्टियस्त्वामनुसमामनु । त्वदुपासाजगन्नाथ सैवास्तुममगोपते " तथा उद्योग पर्व में दुर्योधन से पांडवों के हेतु भी कहा है "यस्तान्द्वेष्टि समांद्वेष्टि यस्ताननुसमामनु । ऐकात्म्यंमांगतंविद्धि पांडवैर्धर्म्मचारिभि: " ॥ इत्यादि तथा श्री प्रह्लादादिक भक्तों से भगवान ने यहीं कहा है " जिसने तुमसे द्वेष किया उस ने मुझ से द्वेष किया " इसका उदाहरण अंबरीष का प्रकरण प्रत्यक्ष है और वहां भी श्रीमुख से कहा है " अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतंत्र इव द्विज । साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥" महा भारत में भी कहा है " तुलसीदलमात्रेण जलस्यचुल्केनच । विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्योभक्तवत्सल: ॥" उद्धव जी से* भी ऐसाही कहा है ' नतथामेप्रियतम आत्मयोनिर्नशङ्करः नचसङ्कर्षणोनश्रीर्नैवात्माचयथा भवान्' । निरपेक्षंमुनिंशांतं निर्वैरंसमदर्शिनं । अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयेंघ्रिरेणुभिः' इत्यादि श्रीमुख से अपने भक्तों से अपनी एकता स्वाधीनता इत्यादि बर्णन किया तो इस से भगवान और उनके भक्तों की एकात्मता ही सिद्ध हुई । " त्रिधाप्येकं सदागम्यंगम्यमेकप्रभेदनै: । प्रेमप्रेमीप्रेमपात्रत्रितयंप्रणतोस्म्यहं" ॥

४२ ॐ तदेवसाध्यतां तदेवसाध्यताम् ।

उसी का साधन करो, उसी का साधन करो ॥ ४२ ॥

हम लोग भी मुक्त कण्ठ से यही कहते हैं ।

इति पञ्चम अनुवाक समाप्त हुआ ।

४३ ॐ दुःसङ्गस्सर्वथैव त्याज्यः ॥

दुःसंग का सब रीति से त्याग करना ॥ ४३ ॥

उसके त्याग में कारण कहते हैं ।

४४ ॐ कामक्रोधमोहस्मृतिभ्रंशबुद्धिनाश-

---

* चारो नाम चार संप्रदाय के आचार्यों ही के लिए . ब्रह्मा माधव, महादेव, विष्णुस्वामी, संकर्षण निम्बार्क और श्री रामानुज, इन मर्य्यादा मार्ग के भक्तों की उत्कर्षता के हेतु उद्धव को सबसे बड़ा कहा ।

सर्वनाशकारणत्वात् ।

(क्योंकि वह) काम, क्रोध, मोह, स्मृतिभ्रंश, बुद्धिनाश और सर्वनाश का कारण है ॥ ४४ ॥

ऐसाही श्रीमुख से भी कहा है "ध्यायतोविषयान्पुंसांसंगस्तेषूपजायते । संगात्सं-जायतेकामः कामात्क्रोधोभिजायते ॥ क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः । स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥ " विषयों के सुख सोचते सोचते विषय संग होता है और विषय संग से अनेक प्रकार की कामना उत्पन्न होती है, और जब उस कामना के पूर्ण होने में कोई बाधक होता है तब क्रोध उत्पन्न होता है और जब उस क्रोध से अनिवार्य बाधकों का प्रत्यय नहीं कर सकता तब मोह हो जाता है और निराश होके रोने लगता है । फिर इस दुःख से सब स्मृति भूल जाती है और जब स्मृति भूल जाती है तब इस की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती और अन्यथा करने पर प्रवृत्त हुआ तहां उस का लोक परलोक सब नाश होता है " इस से यह दिखाया कि सब बिगाड़ का कारण विषय और उसका संगही है ॥

४५ ॐ तरङ्गायितापीमे सङ्गात्समुद्रायन्ति ।

ये (काम क्रोधादिक) तरंगों की भांति होकर भी (दुःसंगसे) समुद्र से हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

दुःसंग में और भी दोष दिखाते हैं—यद्यपि जो लोग सन्मार्ग पर प्रवृत्त हैं उनको अहर्निश भगवदाराधन करते २ काम क्रोधादिक की केवल तरंग आती है, जैसे नित्य विषयों की सुरतान्त, तीर्थ गमन, कथा, श्रवण, वा स्मशान दर्शन से ज्ञान की तरङ्ग आती है, जितनी देर स्मशान पर बैठते हैं संसार नश्वर है, पुत्रादिकों में मोह अच्छा नहीं इत्यादि ज्ञान छांटते हैं पर जहां घर आये तहां फिर संसार काम में मग्न होगये, वैसेही अच्छे लोगों को प्रारब्ध वशात् संग से जो कुछ काम क्रोधादिक की तरंग आती भी हैं । तो वह उतनी ही काल रहती है जब तक कि वे अपना स्वरूप भूले रहते हैं । तथापि यदि वेही सज्जन लोग दुःसंग में पड़ जांय तो ये ही काम क्रोध उनको डुबा दें ।

४६ ॐ कस्तरतिकस्तरतिमायां ? यः संगांस्त्यजति योमहानुभावं सेवते योनिर्ममोभवति ।

कौन तरता है ? माया को कौन तरता है ? जो (संसारी) संगों को छोड़ता है, जो महानुभाव की सेवा करता है, जो निर्मोह होता है ॥ ४६ ॥

यद्यपि महात्माओं की कृपा, और संग त्याग मुख्य साधन हैं तथापि कुटुंबादिक का मोह भी एक बड़ी भारी बेड़ी है इस से इसका त्याग भी मुख्यही है ।

४७ ॐ योविविक्तस्थानं सेवते योलोकबंधमुन्मूलयति निस्त्रैगुण्योभवति योगक्षेमंत्यजति ।

जो एकांत स्थान सेवन करता है जो लोक बंध को जड़ निकाल देता है, निस्त्रैगुण्य होता है, और योग क्षेम छोड़ देता है ॥ ४७ ॥

क्रमशः उसके साधन कहते हैं—यदि जन समाज में रहेगा तो पहले तो उस के अनवच्छिन्न भगवच्चिन्तन में कोलाहलादि से अनेक बाधा पड़ेगी दूसरे अनेक प्रकार के लोगों से मिलने से उनके व्यवहार में व्यापृत होने और उनके संग पड़ जाने का डर है अतएव श्रीमुख से कहा है "विविक्तजनसेवित्वमरतिर्जनसंसदि" ॥ और महात्माओं की भी आज्ञा है "विमुक्तबन्धो विचरेदसंगः ॥" इत्यादि तथा लोक का बन्धन छोड़ना भी एक बड़ा कठिन साधन है कोई हसे न, कोई नाम न धरे, धोती इतनी ही नीचे पहिने कि एड़ी न दिखाय, नहीं निर्लज्ज कहावेंगे, मार्ग में जिस चाल से निकलते हैं वैसेही निकलना चाहिए, इत्यादि लोक कल्पित व्यवहार और भी महा बन्धन के कारण होते हैं इस हेतु सब लोक बन्धन की मूल लज्जा को चौपट कर डालना "एकां लज्जां परित्यज्य त्रैलोक्यविजयी भवेत्" क्योंकि भक्ति के साधन में श्री मुख से आप ने आज्ञा किया है "विलज्जउद्गायति रैतिनृत्यति मद्भक्तियुक्तो भुवनंपुनाति" तो सब के सामने कौन गावेगा कौन रोवैगा कौन नाचेगा ! जो मेरा सा निपट बेहाया

होगा, तथा जब लोक छूटा तब उस से भी बड़ा बन्धन वेद बचा उसके मिटाने के हेतु कहते हैं " निस्त्रैगुण्योभवति " अर्थात् सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों की प्रवृत्ति से अलग हो जाता है श्रीमुख से भी कहा है " त्रैगुण्यविषयावेदा निस्त्रैगुण्योभवार्जुन ॥"

परन्तु जो कहो कि लोक वेद छोड़ के केवल अपना भला करना तो चार्वाक का मत है तो इसका खण्डन करते हुए कहते हैं " योगक्षेमंत्यजति " अर्थात् केवल लोक वेद नहीं छोड़ता बरंच अपने भी खाने पीने पहरिने रहने ओढ़ने बिछाने सोने इत्यादि का शोक छोड़ देता है " भोजनाच्छादनेचिन्तां वृथाकुर्वन्ति वैष्णवाः । विश्वम्भरोगुरुर्येषां किं दासान् समुपेक्षते" और उसकी प्रतिज्ञा भी है "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां येजनाः पर्युपासते। तेषांनित्याभियुक्तानां योगक्षेमंवहाम्यहं" इत्यादि । क्योंकि जब सब छोड़ा फिर अपनी हाय हाय न छूटी तो उस छोडने पर धिक्कार है ।

४८ ॐ यः कर्मफलंत्यजते कर्माणि संन्यसति ततो निर्द्वंद्वोभवति ॥

जो कर्म फल छोड़ता है कर्मों का त्याग करके निर्द्वंद्व होता है । ४८ ॥

निस्त्रैगुण्य होने का क्रमशः साधन कहते हैं, जब तक चित्त में अर्थों की तरंग उठैं तब तक कर्म्मों को नहीं छोड़ना उसका फल छोड़ना और जब कामनाओं की निवृत्ति होजाय तब उन कर्म्मों को भी छोड़ के निर्द्वंद हो जाना । क्योंकि श्री मुख से भी कहा है " निर्द्वंद्वोनित्यसत्वस्थोनिर्योगक्षेमआत्मवान् । यावानर्थउदपाने " इत्यादि ऊपर लिख आए हैं ।

४९ ॐ वेदानपिसंन्यसतिकेवलमविच्छिन्नानुरागंलभते ।

वेदों को भी छोड़ देता है और केवल अविछिन्न अनुराग (प्रीति) को पाता है ॥ ४९ ॥

अब साधन दिखाकर उसकी सिद्ध दशा लिखते हैं जब सिद्ध हो जाता है तब वेदों का त्याग कर देता है और केवल अविच्छिन्न प्रेम पाता है ।

५० ॐ सतरतिसतरतिसलोकान्तारयतीति ।

वह तरता है वह तरता है वह लोकों को तारता है ॥५०॥

नारद जी अपनी प्रतिज्ञा दृढ़ करने के हेतु दो बेर कहते हैं और निश्चय कराते हैं, बरंच यह कहते हैं कि वह आपही नहीं तरता किन्तु संसार को तारता है " पुनातिभुवनत्रयं" "तीर्थीकुर्वन्तितीर्थानि स्वान्तस्थेनगदाभृता " "तेपुनन्त्युरुकालेन " " मद्भक्तियुक्तोभुवनंपुनाति " "स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं" इत्यादि, वाक्यों से उनका संसार में पवित्र करके तारना सिद्ध है ।

इति षष्ट अनुवाक समाप्त हुआ ।

---

५१ ॐ अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपं ।

प्रेम का स्वरूप कहा नहीं जा सकता ॥ ५१ ॥

तो हम लोग क्या कहें ।

५२ ॐ मूकास्वादनवत् ।

गूंगे के स्वाद की भांति ॥ ५२ ॥

अर्थात् केवल अनुभव सिद्ध है क्योंकि मीठे और सलौने में जो भेद वा स्वाद है वह कहा नहीं जा सकता इतनाही कह सकते हैं कि खाके अनुभव करलो उसमें भी गूंगे के स्वाद का क्या पूछना है । यहां वही कहावत है "बिन अपने मरे स्वर्ग नहीं सूझता " ।

५३ ॐ प्रकाश्यतेक्कापिपात्रे । *

---

* जिस पुस्तक में " प्रकाशते " ऐसा पाठ है वहां अर्थ है कि प्रेम स्वरूप कभी किसी पात्र (अधिकारी) में स्वयं प्रकाश पाता है ।

(तथापि) कभी किसी पात्र (अधिकारी) से प्रकाश किया जाता है॥ ५३। †

"ब्रूयुःस्निग्धस्यशिष्यस्यगुरवोगुह्यमप्युत" इत्यादि वाक्य से सिद्ध है तो इसमें यह शंका हुई कि श्री नारद जी ने संसार में कोई पात्र पाए बिनाही इन सूत्रों का प्रकाश क्यों किया ? इसके उत्तर में हम इतनाही कहा चाहते हैं कि यह किसी पात्र का उद्देश्य करके नहीं कहा बरञ्च स्वतः मुंह से प्रेम के आवेश से निकल गया क्योंकि जब पात्र भर जाता है तब आप से आप ऊपर बह निकलता है उस समय यह बिचार नहीं रहता कि नीचे पत्रांतर आधारभूत है वा नहीं। वही दशा इस की भी है जब उस परमानन्द का उच्छ्वास होता है तब यहां भी पात्रापात्र बिचार नहीं होता पागल की भांति गूढ़ तत्व भी अपने आप बकने लगता है।

५४ ॐ गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षण-वर्द्धमानमविच्छिन्नं सूक्ष्मतरमनुभवरूपं ।

(प्रेमस्वरूप) गुणों से रहित, कामनाओं से रहित, प्रतिक्षण में वृद्धिंगत अविच्छिन्न (एकरस मिला हुआ), सूक्ष्मतर केवल अनुभवरूप है ॥ ५४ ॥

कामना रहित, क्योंकि कामना से यह भक्ति व्यवहार हो जायगी इससे स्वर्गादि कामना के अर्थ यजन स्वरूप भक्ति वा काम पूरणार्थ दंपति के प्रेम का नाम प्रेम है इस का निराकरण किया, श्री मुख से भी कहा है, "न मय्यावेशितधियांकामः कमाय कल्पते भर्जिताक्वथिताधानाभूयोबीजायनेष्यते" इत्यादि और सांसारिक प्रेम से इस शुद्ध प्रेम में आधिक्य दिखाने के हेतु "प्रतिक्षणवर्द्धमान" यह कहा क्योंकि संसार में प्रेम पहले तो बड़े चाव से होता है फिर प्रतिदिन अवस्था बल वा रूप गुण धन के घटने से वह प्रेम दिन दिन घटता जाता है और उस अशेष गुण संपन्न नित्य नव किशोर असीमगुणमण्डित अतुल बल सीम परमानन्द-मय में जो प्रेम होगा वह प्रतिक्षण बढ़ता जायगा क्योंकि उत्तम सौन्दर्य्य और

---

† ५३ पर पात्र मिलने से कहीं और कभी महात्मा लोग प्रकाश करते हैं।

गुण का धर्म है कि जितना २ उसको देखते वा बिचारते जाओगे उतनीही उत्तम सूक्ष्मता प्रकट होती जायगी, और जैसा इस प्रेम को संसार के दुःखादि बाधा कर देते हैं वैसी उसमें कोई बाधा नहीं होती क्योंकि भगवद्वियोग के महा दुःख सागर में ये सब संसार के क्षुद्र दुःख डूब जाते हैं " सर्वपदंहस्तिपदे निमग्नं " और सूक्ष्म इतना है कि उसका उदाहरण नहीं दिया जा सकता इसी हेतु अनुभव रूप कहा है पुराणांतर में कथा है कि सती ने किसी कल्प में श्रीजानकी जी का वेष धर के भगवान की परीक्षा किया था इससे हम सब प्रेमियों के शिरोरत्न श्री महादेव जी ने फिर सती के उस देह का स्पर्श न किया। बोधा ने भाषा कवित्त में कहा है "अतिछीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पांव दै आवनो है। सुचिवेध ते नाको सकीर्न तहां परतीत को टांडो लदावनो है॥ कबि बोधा अनी घनी नेजहु ते चढ़ि तापै न चित्त डगावनो है। यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवार की धार पै धावनो है॥"

५५ ॐ तत्प्राप्यतदेवावलोकयति तदेवशृणोति तदेवभाषयति तदेवचिन्तयति।

उसको पाकर उसी को देखता है उसी को सुनता है उसी को बोलता है और उसी का चिन्तन करता है ॥५५॥ *

क्योंकि फिर इसको कहने, सुनने, और देखने को अवशिष्ट नहीं रहता और जहां " तंप्राप्यतमेवअवलोकयति " इत्यादि पाठ है वहां यह अर्थ है कि उसको अर्थात् भगवान को प्रेम द्वारा पाकर उसी को देखता है क्योंकि उस अनिर्वचनीय रूप को देख कर और देखने की इच्छा नहीं होती॥

५६ ॐ गौणीत्रिधागुणभेदादार्तादिभेदाद्वा।

गौणी (भक्ति) तीन प्रकार की, गुण भेद वा आर्तादि भेद से ॥ ५६ ॥

---

* ५५ जिसे पाकर फिर प्रेमी लोग उसी को देखते हैं वही सुनते हैं और उसी को चिन्तन करते हैं।

मुख्या भक्तिका स्वरूप दिखाकर गौणी का स्वरूप कहते हैं सत्व, रज, तम गुणों के भेद से सात्विकी, राजसी, तामसी तीन प्रकार की भक्ति वा श्रद्धा होती है। गुणत्रय विभाग वर्णन में श्रीभगवान ने इसका विस्तार कहा है, वा आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी इन तीनों के भजन के भेद से भी गौणी भक्ति तीन प्रकार की होजाती है ॥

५७ ॐ उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति ॥

पिछले पिछले (भेद) से पहला कल्याणहेतु होता है।५७

अर्थात् तमोगुणी से रजोगुणी और रजोगुणी से सत्वगुणी अच्छी होती है वैसेही अर्थार्थी से जिज्ञासु और जिज्ञासु से आर्त अच्छा होता है क्योंकि सतोगुणी भक्ति से वा आर्त के भजन से शुद्ध भक्ति मिलनें की संभावना है।

इति सप्तम अनुवाक समाप्त हुआ।

---

५८ ॐ अन्यस्मात्सौलभ्यंभक्तौ ।

अन्य से भक्ति में सुगमता है ॥ ५८॥

पूर्व में भक्ति का अनिर्वचनीय स्वरूप कहा है तो इस से जीवों को शंका हो कि ऐसी सूक्ष्म वस्तु के अधिकारी हम कैसे होंगे तो उस शंका मिटाने के हेतु और जीवों को उस मार्ग पर आरूढ़ करने के हेतु कहते हैं कि और जितने साधन हैं सबसे भक्ति (साधन) सुलभ है क्योंकि न इस में विद्या का काम है न धन का न वेद का न आचार का न उत्तमता का न वर्ण का। क्योंकि गनिका को क्या विद्या थी, शवरी को क्या धन था, श्री गोपीजन ने कौन वेद पढ़ा था, गृध्र का कौन आचार था, गज की क्या उत्तमता थी और केवट का कौन वर्ण था। और सबसे बड़ी सुलभता यह है कि इस में कोई बादबिबाद नहीं रहता। क्योंकि—

५९ ॐ प्रमाणान्तरस्यानपेक्षत्वात्स्वयंप्रमाणत्वात् ।

(यहां) अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं स्वयमेव प्रमाण है ॥५९॥

क्योंकि बाद की और प्रमाण की इस में आवश्यकता नहीं जब अपने चित्त में प्रेम का उदय हुआ तब उससे बढ़ कर और प्रमाण क्या चाहिए। प्रमाणान्तर की अनपेक्षता दिखाकर भक्ति में और भी उत्तमता दिखाते हैं।

६० ॐ शान्तिरूपात्परमानन्दरूपाच्च ।

शान्ति रूप और परमानन्द रूप है ॥ ६० ॥ *

अर्थात् इस के शान्ति रूप होने से रजोमय तमोमय नाना प्रकार के बाद और विकल्प चित्त में आपही नहीं होते और परम शांतिःरूप है इसी से परमानन्द रूप है क्योंकि परमानन्द वहांही है जहां बादादि से प्रतिबन्ध नहीं और "परमानन्द" शब्द कहने से भगवान की और भक्ति की एकता दिखाई क्योंकि ईश्वर का भी परमानन्द स्वरूप है "आनन्दमयोऽभ्यासात्" "आनन्दमात्रकरपाद-मुखोदरादि" "आनन्दं ब्रह्म" "आनन्दं ब्रम्हणोविद्वान्" इत्यादि श्रुति से भगवान् का आनन्द स्वरूप सिद्ध है, और जीव में आनन्द का तिरोभाव है तो पुनः आनन्द उद्दीपन के साधन ज्ञानादि कर के परमानन्दमयी भक्ति के आविर्भाव बिना जीव के ताप की निवृत्ति नहीं होती। और वेदांतियों ने ज्ञान का फल आनन्द कहा है ज्ञान को स्वतः आनन्द स्वरूप नहीं कहा है। और भक्ति का स्वरूप आनन्द तो सूत्र में कहतेही हैं।

अब जो जीव को शंका हो कि हम ने तुम्हारे कहने अनुसार योग क्षेमादिक सब छोड़ा परन्तु उस लोक की. गति क्या होगी इस शंका के मिटाने के हेतु कहते हैं।

६१ ॐ लोकहानौचिंतानकार्य्यानिवेदितात्म-लोकवेदशीलत्वात् ।

लोक हानि में चिंता नहीं करना क्योंकि (भक्तों ने) आत्मा, लोक, वेद, शील सब ईश्वर में अर्पण किया है॥६१॥

---

* ६० क्योंकि इसमें शांति मिलती है और परमानन्द का अनुभव होता है।

अर्थात् जो वस्तु कोई किसी को दे देता है फिर उसकी हानि का शोच देने वाले को नहीं होता जिसको देता है उसी को होता हैं। हम लोगों को लोकादि हानि का शोच क्यों करना चाहिये उसका सोच वह (भगवान्) आप करेगा अतएव श्री महाप्रभुजी ने आज्ञा किया है " चिंताकापिनकार्या निवेदितात्मभिः कदापि भगवानपिपुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकींचगतिं । निवेदनंतुस्मर्तव्यं सर्वदा तादृशैर्जनैः । सर्वेश्वरश्चसर्वात्मानिजेच्छातः करिष्यति । सर्वेषां प्रभुसम्बन्धोनप्रत्येक मितिस्थितिः ॥ अतोन्यविनियोगेपि चिन्ताकास्वस्यसोपिचेत् । अज्ञानादथवा ज्ञानात्कृतमात्मनिवेदनं ॥ यैःकृष्णस्तत्कृतप्राणैस्तेषांका परिदेवना " इत्यादि अथवा चतुश्लोकी में फिर आप आज्ञा करते हैं कि † 'एवंसदास्वकर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति प्रभुः सर्वसमर्थोहि ततोनिश्चिन्ततांव्रजेत् ॥ यदि श्रीगोकुलाधीशोधृतःसर्वात्मनाहृदि ततःकिमपरंब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि ॥'

अब जो वैसा दृढ़ नियम न सिद्ध हुआ हो तो क्या करना इस का साधन लिखते हैं ।

६२ ॐ नतदसिद्धौलोकव्यवहारोहेयः किंतुफलत्यागस्तत्साधनंचकार्यमेव ।

उस (निश्चय) की असिद्धि में लोक व्यवहार को नहीं छोड़ना, किन्तु फल छोड़ना, बरञ्च उस (फल) का साधन अवश्यही करना ॥ ६२ ॥ *

क्योंकि विश्वास दृढ़ भए बिना लोक व्यवहार छोड़ने में वही कहावत होगी "नघरकेहुएनघाटके" परन्तु उस का फल छोड़ देना अर्थात् लोक व्यवहार को असार समझना और विश्वास के सिद्धि के साधन में प्रवृत्त होना. उसके कौन २ साधन हैं सो आगे दिखाते है ।

---

† एवं सर्वैःस्व कर्तव्य मिति पाठ भेदः ।

* ६२ और जो वह प्रेम न सिद्ध होय तो लोक व्यवहार तो न छोड़ दे किन्तु कर्मों के फल का त्याग करके उस परम प्रेम का साधन करे ।

६३ ॐ स्त्रीधननास्तिकवैरिचरित्रंनश्रवणीयं ।

स्त्री, धन, नास्तिक, और वैरीका चरित्र नहीं सुनना ॥६३॥

स्त्रियों के चरित्र सुनने से विषयों में वासना होती है, धन का चरित्र सुनने से लोभ की वृद्धि होती है, नास्तिकों का चरित्र सुनने से विश्वास में हानि होती है तथा वैरियों का चरित्र सुनने से उन पर क्रोध की वृद्धि होती है तो ये सब तमोगुणादिक के कारण हैं इस से इनको सुननाही नहीं ।

६४ ॐ अभिमानदंभादिकंत्याज्यं ।

अभिमान, दम्भ आदि को छोड़ना ।

भक्तिमार्ग के मुख्य विरोधी यही दो हैं क्योंकि भक्ति सिद्धि होजाने पर भी इनके फिर उदय होने का भय रहता है । हम बड़े भक्त हैं हम लोगों के उपदेष्टा हैं इत्यादिक अभिमान और बाह्याचरण वा पूजा के आडंबर में भेद न पड़े यह दंभ और आदि शब्द से काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर इत्यादि लिये जाते हैं । जो कहो कि दुस्त्यज है तो कहते हैं ।

६५ ॐ तदर्पिताखिलाचारस्सन्कामक्रोधाभिमानादिकंतस्मिन्नेवकरणीयं ।

सब आचार उसी (भगवान) को अर्पण कर काम क्रोध अभिमान आदि सब उसी पर करना ॥ ६५ ॥

अर्थात् काम करना तो यही कि वह परम श्रेष्ठ हमें मिले, क्रोध करना तो उसी पर कि क्यों नहीं मिलता ? अभिमान भी उसी का कि हमारा स्वामी सर्वेश्वर है हमारा प्यारा सब से सुन्दर है इत्यादि ।

६६ ॐ त्रिरूपभंगपूर्वकंनित्यदासनित्यकान्ताभजनात्मकं वा प्रेमएवकार्य्यंप्रेमएवकार्यमिति ।

तीनो रूपभंग पूर्वक (भगवान का) नित्य दास्य और

नित्यकान्ता की भाँति भजन रूपी प्रेम ही करना प्रेमही करना ॥ ६६ ॥

त्रिरूप शब्द का क्या अभिप्राय है यह कौन जाने यदि हम स्मार्त होते तो ब्रह्मा विष्णु शिव को एक करते वा वेदान्ती होते तो त्रिपुटीभंग वा जीव ईश्वर और ब्रह्म की एकता करते परन्तु यह भक्ति शास्त्र है यहां इनका प्रयोजन नहीं यहां तीनों गुणों को मिटा कर वा भक्ति स्वरूप आनन्दांश के आविर्भाव से तीनों (सत्, चित्, और आनन्द) का परस्पर पृथक्त्व का भंग करना वा गुरु ईश्वर और उसके भक्तों के भेद का भंग इत्यादि। अब हम अपना सिद्धान्त दिखाते हैं। युगुल स्वरूप में और उनको पृथक् मानना अर्थात् यह वह और यह दोनों अलग हैं यह जो तीन प्रकार की भावना है इसका भंग वा प्रेमी प्रेम और प्रेमपात्र इनके भेद के भंग पूर्वक दास भाव से वा कान्ता भाव से प्रेमही करना प्रेमही करना ० इति शब्द से इन साधनों के कहने के पीछे और कुछ शेष वक्तव्य नहीं यह बोधन किया।

इति अष्टम अनुवाक समाप्त हुआ।

६७ ॐ भक्ताएकान्तिनोमुख्या:।

भक्त एकान्ती (अभ्यन्तरचारी) (और सब से) मुख्य होते हैं।

पहिले सूत्रों में साधारण भक्तों की महिमा दिखाकर अब एकान्ती भक्तों की महिमा दिखाते हैं। भक्तों में भी अनन्य और एकान्ती (अपनी भक्ति को गूढ़ रखने वाले) मुख्य हैं। इस एकान्ती शब्द से भक्ति भी सब संसार के दिखावे की भांति एक संसारी आचरण है इस का निषेध किया।

६८ ॐ कण्ठावरोधरोमांचाश्रुभि:परस्परंलपमाना:पावयन्तिकुलानिपृथिवींच।

(जो भक्त लोग) कण्ठ का अवरोध, रोमांच और अश्रु आदि से युक्त होकर परस्परभाषण करते हुए कुल और पृथिवी को पवित्र करते हैं ॥ ६८ ॥ *

स्मरन्तःस्मारयन्तश्चमिथोघौघहरंहरिं । भक्त्यासंजातयाभक्त्या बिभ्रत्युत्पुलकांतनुं ॥ क्वचिद्रुदंत्यच्युतचिन्तयाक्वचित् हसन्तिनन्दन्तिवदंत्यलौकिकाः । नृत्यन्तिगायंत्यनुशीलयन्त्यजं भवन्तितूष्णीम्परमेत्यनिर्वृताः ॥ इत्यादि प्रबुद्ध का वाक्य है ।

परम भागवत प्रल्हाद जी ने कहा है " निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान्वीर्याणिलीलातनुभिः कृतानि । यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं प्रोत्कण्ठउद्गायतिरौतिनृत्यति ॥ यदाग्रहग्रस्तइवक्वचिद्धसत्याक्रन्दतेध्यायतिवन्दतेजनं । मुहुःश्वसन्वक्तिहरेजगत्पते नारायणेत्यात्मगतिर्गतत्रपः ॥" श्रीमुखवाक्य भी है " एवं हरौभगवतिप्रतिलब्धभावोभक्त्याद्रवद्धृदयउत्पुलकःप्रमोदात् । औत्कण्ठ्यबाष्पकलयामुहुरर्द्यमान, स्तच्चापिचित्तबडिशंशनकैर्वियुंक्ते ॥ " एकादश में भी " श्रृण्वन्सुभद्राणिरथांगपाणे र्जन्मानिकर्माणिचयानिलोके । गीतानिनामानितदर्थकानि गायन्विलज्जोविचरेदसंगः ॥ एवंव्रतःस्वप्रियनामकीर्त्या जातानुरागोद्रुतचित्तउच्चैः । हसत्यथोरोदितिरौतिगायत्युन्मादवन्नृत्यतिलोकबाह्यः " तृतीय में भी " देहञ्चतत्वपरमः स्थितमुत्थितं वा सिद्धोविपश्यतियतोऽध्यवसेत्स्वरूपं । दैवादुपेतमथ दैववशादुपेतं वासोयथापरिवृतंमदिरामदान्धः ॥ " इत्यादि और सब भक्तों का आचरण ऐसाही सुनने में आया है यथा श्री गोपीजन का " विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनं " " रुरुदुःसुस्वरंराजन् " " कृष्णोहंपश्यतगति " " ललितामितितन्मनाः " " विक्षिप्तमनसोनृप " इत्यादि और श्रीमहादेव जी की जडोन्मत्त पिशाचचर्या लोक में प्रसिद्ध ही है " स्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मरहरपिशाचाःसहचराः । चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः । अमङ्गल्यंशीलं भवतुतवनामैवमखिलं । तथापिस्मर्तृणां वरदपरमंमङ्गलमसि ॥" * "स्मशानचक्रानिलधूलिधूम्रोविकीर्णविद्योत जटाकलापः । भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो देव-

---

* ६८ वे परस्पर प्रेम की बात करते हुए प्रेम दशा में गदगद कंठ होने से रोमांच होने से और अपने प्रेम के आंसुओं से अपने कुलको वरन पृथिवी को पवित्र करते हैं ।

* दिति से कश्यप जी का वाक्य तृतीय स्कन्ध में अध्याय ॥ १४ ॥

स्त्रिभिः पश्यतिदेवरस्ते ॥ नवस्वलोकेस्वजनःपरोवा नात्याद्दतोनोतकश्चिद्विगर्ह्यः । वयंव्रतैर्यच्चरणापविद्धा माशास्महेजांव्रतमुक्तभोगां ॥ यस्यानवद्याचरितंमनीषिणो गृणन्त्यविद्यापटलंविभित्सवः । निरस्तसाम्यातिशयोपियत्स्वयं पिशाचचर्य्यामचरद्गतिस्सतां ॥ हसन्तियस्याचरितंहिदुर्भगा स्वात्मन्रतस्याविदुषस्समीहितं । यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः श्वभोजनंस्वात्मतयोपलालितं ॥ ब्रह्मादयोयत्कृतसेतुपालायत्कारणंविश्वमिदंचमाया । आज्ञाकरीतस्यपिशाचचर्य्याअहोविभूम्नश्चरितंविडम्बनम् " ॥

अहो जब भगवान शिवजी ने जो कि इस मार्ग के परम गुरु और परम रहस्यवेत्ता " ईशानःसर्वविद्याना मीश्वरःसर्वदेहिनां । ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोधिपतिः " ". अहंकलानांऋषभो " " विद्याकामस्तुगिरिशं " " योदेवानांप्रथमंपुरस्ताद्विश्वाधियोरुद्रोमहर्षी " " हिरण्यगर्भंपश्यतजायमानोसनोदेवः शुभयास्मृत्यासंयुनक्ति " "कस्तञ्चराचरगुरुन्निर्वैरंशान्तविग्रहं । आत्मारामंकथंद्वेष्टिजगतो दैवतंमहत् ॥ " "त्र्यम्बकंयजामहे सुगंधिपुष्टिवर्द्धनं । उर्वारुकमिवबंधनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥ " "तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणंसुराः । ददृशुःशिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवांतकं ". ॥ "विद्यातपोयोगपथ मास्थितंजगदीश्वरं । चरंतंविश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमंगलं ॥ उपविष्टंदर्भमय्यांबृस्यां ब्रह्मसनातनं । नारदायप्रवोचंतं पृच्छतेशृण्वतांसतां ॥ कृत्वोरौदक्षिणेसव्ये पादपद्मञ्चजानुनी । बाहुप्रकोष्टेक्षमाला मासीनंयोगमुद्रया ॥ तंत्रह्मनिर्वाणसमाधिमास्थितं व्युपाश्रितंगिरिशंयोगकक्षां । सलोकपालामुनयोमनूना माद्यंमनुंप्रांजल्यःप्रणेमुः ॥ " इत्यादि श्रुतिपुराणादिवाक्यों से प्रतिपाद्य श्रीमहादेव जीने यह मत्त चर्या अवलम्बन किया तब और भक्तों का क्या पूछना है । ऐसेही ऋषभदेव जीकी भी चर्या है यथा " जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपिजनानांगृहीत मौनव्रतस्तूष्णींबभूव ॥ " तथा जड़भरत जी की भी ऐसी ही चर्या है " तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्ययाभगवतेपारिवर्द्धमानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्यवधीयमानरोमपुलककुलकऔत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयवाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुणचरणारविंदानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुत परमाल्हाद गम्भीरहृदयहृदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणांभगवत्सपर्यानसस्मार ॥ " उद्धव जी ने भी ऐसाही किया है " मुक्तकण्ठोरुरोदह " श्रुतदेवजी ने भी ऐसाही किया है " धुन्वन्वासोननर्तह " राजा चित्रकेतु की भी यही दशा है " सउत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरंप्रेमाश्रुबर्षैरुपमेहयन्मुहुः ॥ प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमोनैवाशकत्तं प्रस-

मीक्षितुंचिरम् " (श्रीमद्भागवत) ध्रुवजी का भी ऐसाही चरित्र है। 'यत्तद्विष्णुपदमाह यत्रहवाववीरव्रतऔत्तानपादिः परमभागवतो अस्मत्कुलदेवताचरणारविन्दोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाण भगवद्भक्तियोगेन दढ़क्लिद्यमानांतर्हृदय औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलवाष्पकलया।भिव्यज्यमानरोमपुलकोऽधुनापि परमादरेणशिरसाविभर्त्ति ॥' इत्यादि। श्री अक्रूर की भी ऐसी दशा हुई " तद्दर्शनाल्हादविवृद्धसंभ्रमप्रेम्णोर्द्धरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः। रथादवस्कंद्यसतेष्वचेष्टतप्रभोरमून्यंघ्रिरजांस्यहो इति ॥" इत्यादि कहां तक कहें सब भक्तों के ऐसेही चरित्र हैं क्योंकि प्रेम भी एक मदिरा है जो पीएगा आपही नाचेगा, रोएगा, हंसेगा, बकेगा, श्रीमहाप्रभु जी का भी 'तत्कथाक्षिप्तचित्तस्तत्विस्मृतान्यो व्रजप्रियः' नाम है।

६९ ॐ तीर्थीकुर्वन्तितीर्थाणिसुकर्मीकर्माणि सच्छास्त्रीशास्त्राणि।

जो तीर्थों को तीर्थ करते हैं कर्मों को सुकर्म करते हैं, शास्त्रों को सच्छास्त्र करते हैं।

" तीर्थीकुर्वन्तितीर्थाणि " " तीर्थपुनानामुनयोभियन्ति " " स्वयंहितीर्थाणिपुनंतिसंतः " इत्यादि वाक्यों से तथा श्रीगङ्गा जी के प्रति भगवान के वाक्यों से सिद्ध है और संत का कर्मों को सुकर्म करना राजा युधिष्ठिर के यज्ञ के प्रसङ्ग से और व्यास जी के सम्बाद से सिद्ध है संतों की महिमा विशेष कर के ३६। ३९। ४०। ४१। सूत्रों में लिख आए हैं।

७० ॐ तन्मयाः।

(क्योंकि वे) तन्मय (भगवत्स्वरूप) हैं।

तीर्थादि के पवित्र करने में कारण देते हैं कि " पवित्राणांपवित्रंयो मङ्गलानांचमङ्गलं " इत्यादि वाक्य से संसार में जो कुछ पवित्रता है भगवान की है तो तन्मय जो भक्त हैं उन के दर्शन स्पर्श से क्यों न पवित्र होंगे "तीर्थपाद" भगवान का नाम है और उनके भक्त उनका चरित्र सर्वदा गान करते हैं और

भगवान के चरित्रही से, तीर्थ, कर्म, और शास्त्र इन सब को सत्तीर्थ, सत्कर्म, और सच्छास्त्रता होती है यह क्रम से दिखाते हैं " तत्रैवगङ्गायमुनाचतत्रगोदावरीसिंधुसरस्वतीच। सर्वाणितीर्थाणिवसंतितत्रयत्राच्यु तोदारकथाप्रसंगः " इत्यादि वाक्यों से तीर्थों का " तत्कर्महरितोषंयत्साविद्यातन्मतिर्यया " " धर्मःस्वनुष्ठितः-पुंसां विष्वक्सेनकथासुयः। नोत्पादयेद्यादिरतिं श्रमएवहिकेवलं " ॥ " दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णेभक्तिर्हिसाध्यते " ॥ धिग्जन्मनस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतंधिग्बहुज्ञतां। धिक्कुलंधिक्क्रियादाक्ष्यंविमुखायेत्वधोक्षजे " ॥ " देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः। देवतायजमानश्चक्रतुर्धर्मश्चयन्मयः " ॥ " नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं नशोभतेज्ञानमलंनिरंजनं। कुतः पुनःशश्वदभद्रमीश्वरे नचार्पितंकर्मयदप्यकारणं ॥" इत्यादि से भगवान का कर्म को भी पवित्र करना और एकादश स्कन्ध के ५ अध्याय में " कर्मण्यकोविदाःस्तब्धा " इत्यादि परम भगवान चमस जी के वाक्य में भगवत्तोष विना कर्मांतर की प्रवृत्ति की निन्दा से कर्मों का सुकर्म होना तथा " नयद्वचश्चित्रपदंहरेर्यशोजगत्पवित्रंप्रगृणीतकर्हिचित्। तद्वायसंतीर्थमुशंतिमानसा नयत्रहंसानिरमंत्युशिक्षयाः ॥ तद्वाग्विसर्गोजनताघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि। नामान्यनंतस्ययशोंकितानियच्छृण्वन्तिगायन्तिगृणंतिसाधवः ॥" इत्यादि से शास्त्रों का सच्छास्त्र करना सिद्ध है तो तन्मय, तत्स्वरुप, तत्समानादरणीय परम भक्त जन तीर्थादिकों को तीर्थ बनावेंगे इसमें कौन आश्चर्य है।

७१ ॐ मोदंतिपितरो नृत्यंतिदेवताः सनाथाचेयंभूर्भवति।

(जिनके चरित्र देख) पितर आनन्द युत होते हैं, देवता लोग नाचते हैं और यह पृथ्वी सनाथ होती है।

" कुलंपवित्रंजननीचधन्या वसुन्धराभागवतैश्चधन्या। स्वर्गेपितेरषांपितरश्चधन्या येषांकुलेवैष्णवनामधेयं " ॥ " सर्वैपुण्यतमोदेशः सत्पात्रंयत्र लभ्यते ॥" " सङ्कीर्तनध्वनिं श्रुत्वा येच नृत्यंति वैष्णवाः। तेषांपादरजःस्पर्शात्सद्यःपूतावसुन्धरा ॥ तद्दिनंसफलंधन्यं यशस्यंसर्वमंगलं। श्रीकृष्णकीर्तनंयत्र यत्नैवायुषोव्ययः ॥ तत्कीर्तनंभवेद्यत्र कृष्णस्यपरमात्मनः। स्थानंतच्चभवेत्तीर्थंमृतानांतत्रमुक्तिदं ॥ नात्रपापानि-

तिष्ठंति पुण्यानिसुस्थिराणिच । तपस्विनाञ्चव्रतिनां व्रतानांतपसांफलं ॥ " इत्यादि शास्त्र में महिमा कही है तथा, श्रीमुख से भी आज्ञा करते हैं (वाराहपुराण) " जान्हव्यादीनितीर्थाणि पापनिष्कृति हेतवे । कांक्षंति हरिदासानां दर्शनं हरिदासवत् ॥ मद्भक्तजनसम्मर्द पादपांसुविसर्जनात् । चतुःसागरपर्यंतं पावनंस्याद्वसुन्धरे॥" तथा प्रह्लाद जी से भी भगवान ने कहा है " त्रिःसप्तभिःपितापूतः पितृभिःसह तेनघ । यत्साधोऽस्यगृहेजातो भवान्वैकुलपावनः । यत्रयत्रचमद्भक्ताः प्रशांताःसमदर्शिनः । साधवः समुदाचारास्तेपूयंत्यपिकीकटाः ॥ " इत्यादि ।

७२ ॐ नास्तितेषुजातिविद्यारूपकुलधनक्रियादिभेदः ।

उन (भक्तों) में जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, और क्रिया आदि का भेद नहीं ।

" नालंद्विजत्वंदेवत्वं ऋषित्वंवासुरात्मजाः । प्रीणनायमुकुन्दस्यनदत्तंनबहुज्ञता ॥" " विप्राद्विषट्गुणयुतादरविंदनाभपादारविंदविमुखाच्छ्वपचं वरिष्टं । मन्ये" " अहोबतश्वपचोतो गरीयान्यज्जिह्वाग्रेवर्ततेनामतुभ्यं ॥" " ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यः शूद्रोवायदिवेतरः । विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयःसर्वोत्तमोत्तमः ॥" " दैतेयायक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्राव्रजौकसः ।" " विद्याधरामनुष्येषुवैश्याःशूद्राःस्त्रियोंत्यजाः । सर्वेभिकारिणोह्यत्र विष्णुभक्तीयथानृप ॥" " किरातहूणांध्रपुलिंदपुल्कसा आभीरकंकायवनाःखसादयः । येन्येचपापायदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्तितस्मै प्रभविष्णवेनमः ॥" पञ्चम स्कन्ध में श्रीहनुमद्वाक्य " नजन्मनूनंमहतोनसौभगं नवाङ्नबुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः । तैर्यद्विशिष्टानपिगोवनौकसां चकारसख्येबतलक्ष्मणाग्रजः "इक्ष्वाकुरैलमुचकुन्दविदेहगाधीरघ्वम्बरीषसगरागयनाहुषाद्याः । मांधात्रलर्कशतधन्वनुरंतिदेवदेवव्रतोबलिरमूर्तरयोदिलीपः ॥ सौभर्युतंकशिबिदेवलपिप्पलादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः । येन्ये विभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः । तेवैविदंत्यतितरंतिचदेवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबराअपिपापजीवाः । यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यक्जनाअपिकिमुश्रुतधारणाये ॥ " इत्यादि वाक्यों से तदीयों को समता स्पष्ट है और वैष्णवे जातिबुद्धि अर्थात् वैष्णवमें जाति भेद करना यह ६६ गहा अप-

राध * में से एक गिना है और भागवतों के लक्षण में भी कहा है " नयस्यजन्मकर्माभ्यांन वर्णाश्रमजातिभिः । सजतेस्मिन्नहंभावो देहेवै सहरेः प्रियः । ' और श्री हरिराय जी ने अपने ग्रन्थ शिक्षा पत्र में भी ऐसा ही लिखा है इसी से

---

* (१) भगवान् में देव विशेष या तत्व विशेष बुद्धि (२) शास्त्रों में ग्रन्थ अर्थात् पौरुषेय बुद्धि (३) वैष्णव में जाति बुद्धि (४) गुरु में साधारण मनुष्य बुद्धि (५) प्रतिमा में शिला बुद्धि (६) प्रसाद में खाद्य बुद्धि (७) चरणोदक में जल बुद्धि (८) तुलसी में वृक्ष साधारण बुद्धि (९) गऊ में पशु साधारण बुद्धि (१०) भागवत और गीता में ग्रन्थ साधारण बुद्धि (११) भगवद् लीला में मनुष्य कृत्य बुद्धि (१२) सांसारिक प्रेम वा स्त्री सुख में लीला मान या स्मरण (१३) श्रीगोपीजन में परकीया भावना (१४) रासलीला में काम बुद्धि (१५) महोत्सव में स्पर्शास्पर्श बुद्धि (१६) नास्तिक वादावलम्बन (१७) सन्देह पूर्वक धर्माचरण (१८) अश्रद्धा पूर्वक धर्माचरण वा धर्म में आलस्य करना (१९) वैष्णव का वाह्य चरित्र देखना (२०) महात्माओं के चरित्र पर गुण दोष विचारना (२१) अपने को उत्तम समझना (२२) किसी देवता या शास्त्र की निन्दा (२३) भगवत् विग्रह के सामने पीठ लगाकर बैठना (२४) जूता पहने, (२५) माला पहने, (२६) छड़ी लिए, (२७) नील वस्त्र पहने [रेशम में नील शुद्ध है], (२८) बिना दंत धावन किए, (२९) मलत्याग मैथुनादि के पीछे बिना वस्त्र बदले मन्दिर में जाना, (३०) भगवद्विग्रह के सामने हाथ पैर हिलाना, (३१) ताम्बूलादि खाना, (३२) ऊंचे हंसना, (३३) कुचेष्टा करना, (३४) स्त्री को घूरना (३५) क्रोध करना (३६) दूसरे को आदर के हेतु अभिवादन करना, (३७) दुर्गन्ध वस्तु खाकर या पहनकर, बिना गन्ध दूर भए वा अजीर्ण भए पर जाना, (३८) मत्त होना अर्थात् नशा सेवन करके जाना, (३९) किसी का अपमान करना वा मारना, (४०) काम क्रोधादि चेष्टा करना (४१) घर आए मनुष्य की विशेष करके सन्त की अभ्यर्थना न करना (४२) सेवा वा धर्म वा पांडित्य अपने में मानना या सुकृत को अपना किया समझना [४३] नास्तिकों का, लंपटों का, हिंसकों का, लोभियों का, मिथ्याचारियों का संग करना [४४] विपत्ति परमेश्वर ने दिया यह बुद्धि करना [४५] धर्म के बल पाप करना [४६] किसी को तृण मात्र भी कष्ट देकर अपने को

वैष्णवों को परस्पर जाति, विद्या, रूप, कुल, धन, और क्रिया आदि का भेद कदापि नहीं करना चाहिये क्योंकि जिस समय वह तदीय हुआ उसी समय सब गुण पूर्ण हो गया " यस्यास्तिभक्तिर्भगवत्यकिंचना, सर्वैर्गुणैस्तत्रसमासतेसुराः " इत्यादि वाक्यों से सिद्ध है ॥

७३ ॐ यतस्तदीयाः।

क्योंकि (ये) उसके हैं ॥ ७३ ॥

पूर्वोक्त अभेद मानने का हेतु देते हैं कि जब तुम तदीय हो और वे भी तदीय हैं तब परस्परन्यूनाधिक भेद कहां रहा सब एक से भाई हुए और जब सब विद्या, जाति, क्रिया इत्यादिकों का मूल पवित्र करनेवाला भगवान इन के हृदय में बैठा है तो वे आपही सर्वोत्तमोत्तम हो गए।

इति नवम अनुवाक समाप्त हुआ।

धार्मिक समझना [४७] स्त्री पुत्र भृत्य परिवार आश्रित दीन संत की उपेक्षा [४८] वस्तु को अपने उपयोगी समझ कर सेवा में देना वा असमर्पित वस्तु ग्रहण करना [४९] इष्टदेव की शपथ खाना [५०] भगवत् धर्म वा नाम बेंचकर द्रव्य कमाना [५१] अन्य देवता से आशा करना [५२] धर्मशास्त्र की मर्यादा का उल्लंघन [५३] वह दशा भए बिना ज्ञान छांकना वा वैसा आचरण करना [५४] देव चरित्र की भांति आचरण करना [५५] सम्प्रदाय भेद से वैष्णवों को ऊंचा नीचा समझना [५६] अवतार की तारतम्य दृष्टि से निन्दा करना [५७] हंसी में भी किसी को तुम परमेश्वर हो यह कहना [५८] परमेश्वर को कदापि किसी कारण से भी अणुमात्र भी परतन्त्र समझना [५९] लोभ से किसी को चरणामृत वा प्रसाद देना [६०] भगवत् चित्र मूर्त्ति नाम आदि की अवज्ञा करना या कहना [६१] किसी जीव को किसी प्रकार भी तापदेना वा उद्वेजन करना [६२] तर्कवितर्क से आस्तिकता से मन डिगाना [६३] भगवदवतार में जन्म कर्म मानना [६४] जुगुल स्वरूप में भेद बुद्धि।

७४ ॐ वादोनावलम्ब्यः ।

वाद का अवलम्ब नहीं करना ॥ ७४ ॥

श्रीमुख से निषेध किया है "वादवादांस्त्यजेत्तर्कान् पक्षंकञ्चननाश्रयेत् । वेदवादरतोनस्यान्नपाखण्डीनहैतुकः ॥" इत्यादि क्योंकि वाद से मनुष्य के चित्त में आग्रह की गांठ पड़ जाती है और जहां आग्रह होता है वहां तत्व नहीं प्रगट होता और बहुत वाद करने से तमोगुण उदय होने की भी संभावना है। अब उस में हेतु देते हैं।

७५ ॐ बाहुल्यावकाशवत्वादनियतत्वात् ।

(क्योंकि वाद में) बहुत अवकाश है और अनियत है ।७५ *

व्यासजी ने भी कहा है "तर्काप्रतिष्ठानात्" तथा श्रुति भी है "नैषाम-तीरोपणीयादुःप्रतर्क्यैः" क्योंकि जितने वाद हैं वे भगवान के तत्व जानने के हेतु हैं सो वादों से कभी नहीं जाना जायगा क्योंकि वहां तक बुद्धि जाती नहीं "यतोवाचोनिवर्तंते अप्राप्यमनसासह" "यद्वाचानाभ्युदितं" सनत्सुजात में भी "तन्नविदुर्वेदविदोनवेदाः" नेदंयदिदमुपासते" "वेदान्तकृद्देदविदेवचाहं" "शब्द-ब्रह्मसुदुर्बोधं प्राणेन्द्रियमनोमयं । अनन्तपारगम्भीरं दुर्विगाह्यंसमुद्रवत्" "नैतन्मनो-विशतिवागपिचक्षुरात्माप्राणेन्द्रियाणिच" इत्यादि से ईश्वर की वादों से दूरता स्पष्ट है और वेद भी उसके विषय में नेति नेति कहते हैं तब व्यर्थ वाद क्यों करना क्योंकि उस की प्रतिज्ञा है "भक्त्याहमेकयाग्राह्यः" इस्से वादों को छोड़ कर केवल उस पर विश्वास करना ।

७६ ॐ भक्तिशास्त्राणि मननीयानितदुद्बोधक कर्म्माण्यपिकरणीयानि ।

भक्ति शास्त्रों को मनन करना और उस (भक्ति) को बढ़ाने वाले कर्मों को करना ।

---

* ७५ क्योंकि वाद में बाहुल्य का बड़ा अवकाश है और उस में कोई नियम नहीं है ।

बाद छोड़कर केवल सिद्धान्त स्वरूप भक्ति शास्त्रों को देखना और उनका चिंतन करना, आचार्य और भगवज्जन और सिद्धान्तों के रहस्य को जानना और भक्ति बढ़ानेवाले उत्सव, सत्संग, तीर्थाटन, कथा श्रवण, तदीयों से आलाप, भगवत्सेवा और गुरुशुश्रुषा इत्यादि कर्म्म करना। इससे भक्ति प्रतिक्षण बर्द्धमान रहैगी।

७७ ॐ सुखदुःखेच्छालाभादित्यक्ते काले प्रतीक्ष्यमाणे क्षणार्द्धमपि व्यर्थं न नेयं ।

सुख दुःख इच्छा, लाभादि (का अभिमान) छोड़ कर काल की प्रतीक्षा करते हुए भी आधा क्षण भी व्यर्थ न बिताना ॥ ७७ ॥

यद्यपि इच्छादि के परित्याग से पूर्ण काम हो गए हैं और कुछ कर्तव्य है नहीं तथापि भगवद्भजन बिना क्षणभर भी नहीं बिताना क्योंकि यह तो नित्य कार्य है देखो मरने के समय करोड़ उपाय करो क्षण भर भी विशेष मनुष्य नहीं रह सकता ऐसे अनमोल क्षण को व्यर्थ बिताना कैसी मूर्खता की बात है।

७८ ॐ अहिंसासत्यशौचदयाऽस्तिक्यतादिचारित्र्याणि पालनीयानि ।

अहिंसा, सचाई, शुद्धि, दया, आस्तिक्यता आदि सब, चारित्रों का पालन करना ॥ ७८ ॥

क्योंकि सत्व गुण के ये सब कृत्य हैं इन के न करने से वा इनसे विरुद्ध करने से तमोगुण की प्रवृत्ति होती है और भक्ति में बाधा होती है ॥

७९ ॐ सर्वदासर्वभावेन निश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः ।

सर्वदा सब प्रकार से निश्चिन्त होकर भगवान ही का भजन करना ॥ ७९ ॥

साधारण शिक्षा देकर सिद्धान्त की शिक्षा देते हैं कि सर्व्वदा सब काल में दुःख में सुख में अनेक कर्मों में प्रवृत रहने के समय भी सर्व भाव से अर्थात् उसको अपना सर्वस्व मान कर केवल उसीही का भजन करना और भजन भी निश्चिन्त हो-कर करना क्यों जो किसी प्रकार का खटका रहता है तब भजन भली भांति नहीं होता।

८० ॐ सकीर्त्यमानश्शीघ्रमेवाविर्भवत्यनुभावयति भक्तान्।

वह गाए जाने से शीघ्रही प्रगट होता है और अपने भक्तों को अनुभव कराता है ॥८०॥ *

सो तो उसकी प्रतिज्ञाही है "नाहंवसामि वैकुण्ठे योगिनांहृदयेनच। मद्भक्तायत्रगायन्ति तत्रतिष्ठामिनारद ॥" और नारद जी ने भी कहा है "प्रगायतः-स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः। आहूतइवमेशीघ्रं दर्शनंयातिचेतसि ॥" श्रीमहाप्रभु जी ने भी कहा हैं "क्रिश्यमानान्जनान्दृष्ट्वा कृपायुक्तोयदाभवेत्। तदासर्वं-सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतंवहिः॥ सदानन्दमयस्यापि कृपानन्दःसुदुर्लभः। हृद्गतः स्वगुणान्श्रुत्वा पूर्णःप्लावयतेजनान् ॥" और श्रीमहाप्रभु जीका "स्वयशो गान-संहृष्टहृदयांभोजविष्टरः। यशःपीयूषलहरी प्लावितोन्यरसःपरः ॥" वाक्य है।

८१ ॐ त्रिसत्यस्यभक्तिरेव गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी।

त्रि (काल में) सत्य (भगवान) की भक्ति ही सब से (साधनों से) बड़ी है भक्ति ही बड़ी है ॥८१॥

"भक्त्यैवतुष्टिमभ्येतिं विष्णुर्नान्येनकेनकेचित्। प्रीयतेमलयाभक्त्या हरिरन्य-द्विडम्बनं, भक्त्यातुतोष भगवान् गजयूथपाय" भक्त्याहमेकयाग्राह्यः" भक्तिःपुनाति-मन्निष्ठा" भक्त्यामामभिजानाति" भक्त्यैकलभ्यःपुरुषोत्तमोहि" भक्तिमान्यःसमे-प्रियः" "भक्तियोगेनसेवते" भक्त्यैकलभ्येपुरुषेपुराणे मुक्तौ किमर्थं क्रि-

---

* ८० वह प्रेम मूर्ति भगवान भजन करने से शीघ्रही हृदय में वा प्रत्यक्ष प्रगट होकर भक्तों को प्रेमानन्द का अनुभव कराता है।

यतेप्रयत्नः " "धर्मार्थकामैःकिंतस्यमुक्तिस्तस्यकरे स्थिता । समस्तजगतांमूर्ध्नियस्यभक्तिःस्थिराकरे ॥" "ब्रह्मसंस्थोमृतत्वमेति" "मयिभक्तिर्हि भूतानाममृतत्वायकल्पते" "तन्निष्ठस्यमोक्षोपदेशात्" "तत्संस्थस्यामृतोपदेशात्" "सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मीतिप्रयाचते। अभयंसर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतंमम ॥" "भक्त्यात्वनन्ययाशक्यः" "भक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया" "श्रद्धावान्भजतेयोमांसमेयुक्ततमोमतः" "भक्तिप्रियोमाधवः""मयिसंजायते भक्तिः कोन्योस्यार्थोवशिष्यते"; "योमेभक्त्याप्रयच्छति।" "तदहंभक्त्युपहृतं" " अण्वप्युपाहृतंभक्तैःप्रेम्णाभूर्येवमेभवेत् " " श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णेभक्तिर्हि साध्यते" " अपियः सुदुराचारो भजतेमामनन्यभाक् " " अहंभक्तपराधीनो " इत्यादि वेद, उपनिषत्, श्रीमुखवाक्य, रामायण, भारत, स्मृति, व्यासमूत्र, शांडिल्यमूत्र, पुराण, और तन्त्रों से सिद्ध है कि सब साधनों में मुख्य साधन केवल भक्ति ही है विस्तर भयात् विशेष प्रमाण नहीं दिया ।

८२ ॐ गुणमाहात्म्यासक्ति १ रूपासक्ति २ पूजासक्ति ३ स्मरणासक्ति ४ दासासक्ति ५ सख्यासक्ति ६ कान्तासक्ति ७ वात्सल्यासक्ति ८ आत्मनिवेदनासक्ति ९ तन्मयतासक्ति १० परमविरहासक्ति ११ रूपा एकधाप्येकादशधा भवति ॥

(यह भक्ति) एक रूपही होकर गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दासासक्ति, सख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति, और परमविरहासक्ति रूप से एकादश प्रकार की होती है ॥ ८२ ॥ *

---

* ८२ जो भक्ति गुण वा महात्म के सुनने में रूप में पूजा में स्मरण करने में दास्य करने में सखा भाव में वात्सल्य भाव में कान्ता भाव में आत्म निवेदन में तन्मय में और परम विरह में अलग अलग वो कुछ वा सब आसक्तियों के होने से एक भी एकादश भांति की सी होती है ।

इस से श्रवणादि नवधा भक्ति गौण है इसका निषेध किया क्योंकि नारद जी का मत है कि भक्ति बीज के हृदय में उत्पन्न होने से पूर्व जो श्रवणादिक है उसको श्रवण भक्ति नहीं पुकार सक्ते और यह पूर्वोक्त जो श्रवणादिक है वे शुद्धा भक्ति से भिन्न नहीं हैं अतएव प्रति शब्द के साथ आसक्ति का शब्द दिया है। जो यह शंका करो कि जिनको प्रेम सिद्ध है उनको तो पूर्वोक्त आसक्तियां होंगी सो नहीं यह विशेष आसक्ति परत्व है। जैसे प्रेमियों को अपने प्रेम पात्र का सब ही अंग सुन्दर लगता है तथापि प्रति प्रेमी को अपने प्रेम पात्रों में कोई अंग वा चेष्टा विशेष मोह के विषय होते हैं, वैसेही पूर्ण प्रेमियों को यद्यपि सबही आसक्तियां सिद्ध हैं तथापि किसी की किसी में विशेष रुचि है किसी को किसी में है। श्रवणादिकों को गौणी भक्ति मानने में एक बड़ा दोष यह है कि जैसे अर्जुन सख्य के वा श्री हनुमान जी दास्य के अधिकारी हैं तो जिनके मत में यह भक्तियां गौणी हैं उन के मत से ये भक्त भी गौण हुए। तो इस सूत्र से शुक, प्रल्हाद, अर्जुन, बलि, बिभीषण आदि एक एक भक्ति के विशेष अधिकारी महानुभावों को गौणभक्त कहनेवालों का मत परास्त हुआ और सिद्ध हुआ कि प्रेम एक ही वस्तु है जो केवल रुचि की विचित्रता से अलग अलग छलावे दिखता है। इन में तन्मयतासक्ति तथा परम विरहासक्ति वियोगी भक्तों को सिद्ध है। शेष आसक्तियां संयोगी वियोगी दोनों को सिद्ध हैं। और किसी२ भक्त को एक एक आसक्ति सिद्ध है परन्तु किसी को दो तीन भी सिद्ध हैं और श्री गोपीजन को तो सभी सिद्ध हैं।

१ "गुणमाहात्म्यासक्ति"—जैसा परीक्षित् को नारद को, तथा हनुमान जी को और श्रीपृथुराजा को जिसने केवल हरि गुण श्रवण के अर्थ दस हजार कान मांगे थे। परीक्षित ने कहा है "नैषातिदुःसहाक्षुन्मां त्यक्तोदमपिबाधते। पिबंतं त्वन्मुखांभोजच्युतं हरिकथामृतं॥" नारद जी का वाक्य "देवदत्तामिमांवीणां स्वरब्रह्मविभूषितां। मूर्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहं" "प्रगायतःस्ववीर्याणि तीर्थपादप्रियश्रवाः। आहूतइवमे शीघ्र दर्शनंयातिचेतसि॥" हनुमान जी का तो ध्यानही है "यत्रयत्ररघुनाथकीर्तनं तत्रतत्रकृतमस्तकांजलिं। बाष्पवारिपरिपूरि-लोचनं मारुतिंनमतराक्षसांतकं॥" तथा अपने मुंह से कहा है [रामायण उत्तर-काण्ड १०७ सर्ग ३१ श्लोक] "यावत्तवकथालोके विचरिष्यतिपावनी। तावत्

स्यास्यामिमेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन् ॥" तथा [श्रीमद्भागवत पंचम स्कन्ध १९ अध्याय ८ श्लोक] "सुरोऽसुरोवाप्यथवानरोनरः सर्वात्मनायःसुकृतज्ञमुत्तमं । भजेतरामंमनुजाकृतिंहरिं यउत्तरामनयत्कौसलान्दिवं "।

२ "रूपासक्ति"—दो प्रकार की एक किशोर रूप में एक बाल रूप में। बाल रूप में श्री मातृचरण श्री नन्दोपनन्दादिक वृद्ध व्रज वासियों को, तथा किशोर रूप में व्रज की स्त्री पुरुष पशु पाक्षि मात्र को जैसा " अहोअमीदेववरामरार्चितं" इत्यादि श्लोकों में, श्री मुख से भी कहा है और "अक्षण्वतांफलमिदंनपरंविदामः" इत्यादि वेणु गीत के श्लोकों से तथा " वामबाहुकृतवामकपोलो " इत्यादि युगल गीत के श्लोकों से सिद्ध है।

३ " पूजासक्ति "—महाराज पृथु को, जैसा उन्होंने कहा है " यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितंमलंधियः । सद्यःक्षिणोत्यन्वहमेधतीसती यथापदांगुष्ठविनिःसृतासरित ॥" इत्यादि।

४ " स्मरणासक्ति "—परम भागवत प्रह्लाद को, जैसा "सोहंप्रियस्यसुहृदः परदेवताया लीलाकथास्तवनृसिंहविरंच्यगीताः । अंजस्तितर्म्यनुगृणनगुणविप्रमुक्तो दुर्गाणितेपदयुगालयहंससंगः ॥" इत्यादि।

५ " दासासक्ति "—परम भागवत प्रह्लाद और हनुमान आदि को, जैसा प्रह्लाद जी का वाक्य " आयुःश्रियंविभवमैंद्रियमाविरिंच्यात् । नेच्छामितेविलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनयमांनिजभृत्यपार्श्वं ॥ " तथा हनुमान् जी का वाक्य " दासोहंकोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।" इत्यादि और यथा अक्रूर जी का वाक्य " अहंहिनारायणदासदासो दासानुदासस्यच दासदासः " ॥ विदुर जी का वाक्य " वासुदेवस्यथेभक्ता शान्तास्तद्गतमानसाः । तेषांदासस्यदासोहंभवेयंजन्मजन्मनि ॥" इत्यादि । तथा उद्धव जी और युधिष्ठिर को तो हरिदास नाम ही मिला है।

६ " सख्यासक्ति "—जैसा अर्जुन, सुग्रीव, उद्धव, कुबेर, सुदामा, देव, मुद्गल श्रीदामादि, गरुड़ इत्यादि और कभी कभी हनुमान जी को भी हो सक्ती है। अर्जुन को श्रीमुख से कहा है " भक्तोसिमेसखाचेति " तथा अर्जुन का वाक्य " सखेतिमत्वाप्रसभंयदुक्तं हेकृष्णहेयादवहेसखेति " तथा श्रीमद्भागवत " नर्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हेपार्थहेऽर्जुनसखेकुरुनन्दनेति संजल्पितानिनरदेवहृदिस्पृ-

शानि स्मर्तुर्लुठन्तिहृदयंममभाधवस्य ॥ शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्यादृय-स्यऋतवानितिविप्रलब्धः । सख्युःसखेवपितृवत्तनयस्यसर्वं सोहेमहान्महितहाकुमते-रघंमे॥" तथा "याप्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी। त्वामनुस्मरतःसामेहृदयान्नाप-सर्पतु ॥" उद्धव जी की " वृष्णीनांप्रवरोमंत्री कृष्णस्यदयितःसखा ॥" श्रीमुख वाक्य भी " नोद्धवोंण्वपिमन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितःप्रभुः " "नतथामेप्रियतमोआत्मयो-निर्नशंकरः । नचसंकर्षणोनश्रीर्नैवात्माचयथाभवान् " उद्धव जी का वाक्य " शय्यासनाटनस्थान स्नानक्रीड़ाशनादिषु । कथंत्वांप्रियमात्मानंवयंभक्तास्त्यजे-महि ॥" तथा " मंत्रेषुमांवाउपहूययत्त्वमकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः । पृच्छेःप्रभो मुग्धइवाप्रमत्तस्तन्नोमनोमोहयतीवदेव " कुबेर की श्रीशिव जी में, यथा मनुजी का वाक्य " हेलनंगिरिशभ्रातुर्धनदस्यत्वयाकृतं ।" तथा श्रीशुकदेव जी का वाक्य " उपास्यमानंसख्याच भर्त्रागुह्यकरक्षसां ।" कोश में भी " कुबेरःत्र्यम्बकसखा " इत्यादि । सुबल श्रीदामादि की यथा " श्रीदामानामगोपालो रामकेशवयोःसखा । सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाःप्रेम्णेदमब्रुवन् ।" एवंसुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ।" इत्यादि दशम के १८ अध्याय में सब इनही लोगों के सख्यत्व की सीमा लिखी है । श्रीसुदामा जी की यथा " कृष्णस्यासीत्सखाकश्चिद्ब्राह्मणोब्रह्मवित्तमः । मनुब्र-ह्मन्भगवतःसखासाक्षाच्छ्रियःपते: ॥" जिसका भगवान ने ऐसा आदर किया " तंविलोक्याच्युतोदूरात्प्रियापर्यंकमास्थितः । सहसोत्थायचाभ्येत्य दोर्भ्यांपर्यग्रही-न्मुदा ॥ सख्युःप्रियस्यविप्रर्षे रंगसंगातिनिर्वृतः । प्रीतोव्यमुंचदब्बिंदून्नेत्राभ्यांपुष्करे-क्षणः ॥ अथोपवेश्यपर्यंके स्वयंसख्युःसमर्हणं । उपहृत्यावनिज्यास्यपादौपादावने-जनीः ॥ अग्रहीच्छिरसाराजन् भगवांल्लोकपावनः । कुचैलंमलिनंक्षामं द्विजंधमनि-संततं ॥ देवीपर्यचरच्छैव्याचामरव्यजनेनवै ॥ योसौ त्रिलोकगुरुणा श्रीनिवासेन संभृतः । पर्यंकस्थां श्रियं हित्वा परिष्वक्तोऽग्रजो यथा ॥" जिसके चावल भगवान ने आपही छीन कर खाए और " सख्युः प्रियचिकीर्षया " " परमप्रीणनं सखेः " " पर्यंकेभ्रातरीयथा " " दाशार्हकाणामृषभः सखामे " " सुहृत्कृतं फल्ग्वपिभूरिकारि " " तस्यैवमेसौहृदसख्यमैत्री " " एवंसविप्रोभगवत्सुहृत्तदा " इत्यादि । गरुड़ की जैसी " भगवान्भगवत्प्रियः " " विनतासुतांसे विन्यस्त-हस्तमपरेणधुनानमब्जं । " तथा हनुमान जी की " नजन्मनूनंमहतोनसौभगंनवा-

ह्नबुद्धि र्नाकृतिस्तोषहेतुः । तैर्यद्विसृष्टानपिनोवनौकसश्चकारसख्येवतलक्ष्मणाग्रजः ॥"
तथा सुग्रीव की बाल्मीकि रा० किष्किन्धा षष्ठ सर्ग श्लोक १२ " तमब्रवीत्ततो-रामः सुग्रीवं प्रियवादिनं । आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थंप्रविलम्बसे ॥" तथा सुग्रीव का वाक्य ७ सर्ग श्लोक १३ " हितंवयस्यभावेन ब्रुवे नोपदिशामि ते । वयस्यतां पूजयन्मे नत्वंशोचितुमर्हसि " तथा श्रीरामजी का वाक्य ७ सर्ग श्लोक १६ "कर्त-व्यंयद्वयस्येन स्निग्धेनचहितेनच । अनुरूपंचयुक्तञ्च कृतंसुग्रीवतत्त्वया ॥ एषचप्रकृति-स्थोहमनुनीतस्त्वयासखे । दुर्लभोहीदृशोबंधुरस्मिन्काले विशेषतः ॥" इत्यादि ।

७ " कान्तासक्ति "—यथा श्री गोपीजन को । यद्यपि श्रीगोपीजन को सभी आसक्तियां सिद्ध हैं यह पहले लिख आए हैं और बिरहासक्ति में निरूपण भी करेंगे तथापि श्री गोपीजन की आसक्तियों में कांतासक्ति अङ्गी भाव से है जो "कृष्णंवि-दुःपरंकान्तं " इत्यादि वाक्यों से सर्वत्र सिद्ध है ।

८ "वात्सल्यासक्ति"— श्रीनन्द, यशोदा, कौशल्या, दशरथ, सुमित्रा, कश्यप, अदिति, धनिष्ठा, श्री बृषभानु, कीर्तिदा, पूर्णमासी इत्यादि को ।

९ "आत्मनिवेदनासक्ति"—यथा बलि को, सर्वस्वात्मनिवेदनेबलिरभूत् ।

१० "तन्मयतासक्ति"—यथा श्री शिव जी को, जिनका अभेद पुराणों से सिद्ध है ।

११ "परमविरहासक्ति"—यथा श्री उद्धवादिको, "येगेनकस्तद्विरहंसहेत" इत्यादि । तथा श्री गोपीजन को ।

अब श्री गोपीजन में सभी आसक्तियां सिद्ध हैं यह दिखाते हैं ।

१ "गुणमाहात्म्यासक्ति"—श्री गोपीगीत, वेणुगीत, युगुलगीत, भ्रमरगीत, आदि से सिद्ध है, २ "रूपासक्ति"—गोपीनांपरमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने । क्षणंयुगशतमिव यासां येनविनाभवत् ॥ अपरानिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणातन्मुखांबुजं आपीतमपिनातृप्यत्संतस्तञ्चरणंयथा ॥" इत्यादि से, ३ "पूजासक्ति" फल फूलादि दान से, ४ "स्मरणासक्ति"—"स्मरंत्यःकृष्णचेष्टितं" इत्यादि से, ५ "दासासक्ति" "भवामदास्यः" " श्यामसुन्दरतेदास्यः " " शिरस्सुचकिंकरीणां " इत्यादि, ६ "सख्यासक्ति"—"सखउदेयिवान्" "भजसखेभवत्" "कितवयोपितः" इत्यादि से ७ "कान्तासक्ति"—"कान्तकामदं" "प्रेष्ठोभवान्" "दयितदृश्यतां" "सुरतना थते" इत्यादि वाक्यों से । ८ वात्सल्यासक्ति—"गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डल" से

दामोदर लीला आदि में स्पष्ट है। ९ "आत्मनिवेदनासक्ति"—"यःपत्यपत्य" इत्यादि श्लोकों से, १० "तन्मयतासक्ति"—"कृष्णोहं" इत्यादि वाक्यों से, ११ "परमविरहासक्ति" "क्षणंयुगशतमिव" इत्यादि से। और इन श्री गोपीजन को नित्यलीला में श्री मुख का दर्शन होते भी केवल पलक की ओट में जिनको परमवियोग होता है और कहती हैं कि हे निर्दई विधाता इस मुखचन्द्र देखने के हेतु तुझको रोम रोम में आंखें बनानी थी उसके बदले यह उलटा अन्धेर किया कि बिना बात की पलक बना दी। तो जिनका प्रेम और बिरह इतना सीमा के बाहर है उनको ये सब आसक्तियां सिद्ध हों इस में क्या आश्चर्य है। जिन की चरणारविन्द की रेणु के प्रसाद से लोग प्रेम पद के अधिकारी हो सकते हैं उन के प्रेम का क्या पूछना है। भक्तिमार्ग के उद्धार कर्ता श्रीआचार्य्य जी ने जिनकी स्पृहा की है यथा 'गोपिकानांचयतदुःखं तत्दुःखंस्यान्ममक्वचित्॥' और जिन को अपने मार्ग का गुरू लिखा है यथा " गोपिकाप्रोक्तागुरवःसाधनेमताः " तो अब इस से बढ़ कर उनके आदर के हेतु वा प्रमाण के हेतु हम क्या कहें।

ये प्रेम के ग्यारह अलग २ भेद नहीं हैं किन्तु स्वरूप हैं। क्योंकि जो अलग होती तो जिस को एक सिद्ध हो उस को दूसरी न होती और यदि दो सिद्ध होंगी तो एक से जिस को दो सिद्ध हो उस की विशेषता होगी और प्रेमियों में कोई छोटा बड़ा नहीं इस से भक्ति एकही है केवल प्रेमियों की रुचि भेद से अलग दिखाती है।

८३ ॐ इत्थंवंवदन्तिजनजल्पनिर्भया एकमताःकुमारव्यासशुकशाण्डिल्यगर्गविष्णुकौण्डिन्यशेषोद्धवारुणिबलिहनुमद्विभीषणादयो भक्त्याचार्याः

कुमार (सनकादिक) व्यासजी, शुकदेवजी, शाण्डिल्य, गर्गाचार्य, विष्णु, कौण्डिन्य, शेष, उद्धवजी, आरुणि, बलि, हनुमानजी, विभीषण, आदि भक्ति के आचार्य, लोक के उपहास से निर्भय होकर पूर्वोक्त मार्ग कहते हैं ॥ ८३ ॥

---

* ८३ लोगों की बकवाद से निर्भय होकर एक मत से कुमार व्यास शुक शाण्डिल्य गर्ग विष्णु कौडिन्य शेष उद्धव आरुणि बलि हनुमान और विभीषणादिक भक्ति के आचार्य यही कहते हैं।

कुमार—सनकादिक, इन का प्रेम मार्ग निम्बार्क मत के नाम से प्रसिद्ध है भगवान ने इन लोगों से अपना तत्व हंस का स्वरूप लेकर कहा है और इनकी वंश परम्परा मन्वन्तर वर्णन में श्रीमद्भागवत में लिखी है " महर्षयः सप्तपूर्वे चत्वारोमनवस्तथा । मद्भावामानसाजाता येषांलोकइमाःप्रजाः ॥" और प्रमाणिक स्मार्तों के निबंधों में भी एकादशी के प्रसङ्ग में ४९ दंड का वेध मानने वालों का इन का मत " कपालवेधमित्याहु राचार्यायेहरिप्रियाः " " निम्बार्को भगवान्येषां " "मित्याहुः सनकादयः ॥" इत्यादि वाक्यों से प्रमाण करके लिखते हैं और निम्बार्काचार्य ने अपना परमाचार्य इनही लोगों को माना भी है जैसा उन्हों ने दशश्लोकी में कहा है " उपासनीयंनितरांजनैःसह प्रहाणयेऽज्ञानतमोनिवृत्तये । सनंदनाद्यैर्मुनिभिर्यथोक्तं श्रीनारदायाखिलतत्वसाक्षिणे ॥" इत्यादि और लोग तो भक्ति साधनार्थ ही प्रगट हुए हैं क्यौंकि यद्यपि उन्हों ने अपना शिष्य रूपी वंश तो स्थापन किया पर पिता की आज्ञा भी न मान कर मोह करने वाली और सृष्टि न किया यथा " तेनैच्छन्मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः " इत्यादि बरंच भक्ति स्थापनार्थ यह भगवानही का अवतार है "तप्तुन्तपोविविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः सचतुःसनोभूत् । प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्वं सम्यग्जगादमुनयोयदचक्षतात्मन् ॥" इति ।

व्यास—व्यास जीने तो मुक्तकण्ठ होकर कहाही है कि " आलोड्यसर्वशास्त्राणि विचार्यचपुनःपुनः । इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयोनारायणः सदा ॥" इत्यादि जो कहो कि अनेक पुराणों में व्यास जी ने अनेक मत और उपासना कही है तो उस में भक्ति की विशेषता कहां आई यह शंका मत करना क्यौंकि व्यास जी की तो दृढ़ प्रतिज्ञा है " वेदेरामायणेचैवपुराणेभारतेतथा । आदावन्तेचमध्येच हरिःसर्वत्रगीयते ॥" इत्यादि इन को भक्ति मिलने का विशेष वर्णन भक्त वंश परंपरा में मिलेगा ।

शुकदेवजी—शुकदेवजी ने राजा से पहिले ही सिद्धान्त स्वरूप कहा है "देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि । तेषांप्रमत्तोनिधनं पश्यन्नपि नपश्यति ॥ तस्माद्भारतसर्वात्माभगवान्हरिरीश्वरः । श्रोतव्यःकीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयं ॥ एतावान्सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया । जन्मलाभःपरःपुंसामंतेनारायणस्मृतिः ॥ प्रायेणमुनयोराजन् निवृताविधिनिषेधतः । नैर्गुण्यस्थारमन्तेस्म गुणानुकथने हरेः ॥" इत्यादि

क्यौ न कहे वेद जिनको मुक्त लिखता है "शुको मुक्तो वामदेवोवा" और भगवान की माया जिनको कभी व्यापीही नहीं, जिनको देख कर स्त्रियों ने भी लज्जा न की, जिन्हों ने पिताको वृक्षों में से उत्तर दिया और प्रेममार्ग का सिद्धान्त स्वरूप श्रीमद्भागवत प्रगट करके राजा परीक्षित को मोक्ष दिया तथा सप्ताह में भी बीच २ में जब लीला स्मरण आती थी तब बेसुध हो जाते थे उन के प्रेम का निरूपण यहां क्या हो सकता है ॥

शाण्डिल्य—शाण्डिल्य जीने तो स्वतन्त्र भक्तिशास्त्र ही रचा है जिसमें ज्ञान योगादि से भक्ति साधन ही उत्तम कहा है ।

गर्ग—गर्गाचार्य ने अपनी गर्गसंहिता में अनेक प्रकार के भक्ति के रहस्य तथा यादव आदि के नष्ट होने पर जब भगवत्तत्व का जानने वाला कोई नहीं रहा तब वज्रनाभ से अनेकों प्रकार का रहस्य, जो व्रजमें तथा उद्धव नारदादिकों के मुख से सुना था, कह कर फिर से भक्ति. मार्ग का स्थापन किया । इनको वात्सल्य और दास्य दोनों भक्ति सिद्ध थी ।

विष्णु—लोक में जिनका नाम विष्णु स्वामी प्रसिद्ध है । विशेष वर्णन परम्परा में देखो ।

कौण्डिन्य—कौण्डिन्य के विषय में हम इतनाही जानते हैं कि हमारे आचार्य ने अपनी गुरु परम्परा में श्री गोपीजन के समान इनको भी माना है यथा " कौण्डिन्योगोपिकाःप्रोक्ता गुरवः " इति और जिन को तन्मयतासक्ति थी जिनको इस आसक्ति से वृक्षों में भी सर्वत्र श्री अनन्तका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ था ।

शेष—शेष जी ने केवल दास्य भक्ति की शिक्षा के हेतु श्री लक्ष्मण जी का स्वरूप लेकार संसार को दिखाया कि दास्य इसका नाम है और इस रीति करना होता है और आप ने भी पञ्चवटी में अपने सब गुप्त सिद्धान्त उपदेश किए तथा श्री लक्ष्मी जी और गरुड़ जी से नारायणीय सिद्धान्त पाकर उन्हों ने चित्रकेतु इत्यादि को उपदेश किया जो मत अब तक रामानुजीय नाम से प्रसिद्ध है। और जिस में यामुन शठकोप इत्यादि महात्मा और अग्रस्वामी इत्यादि प्रेमी हुए ।

उद्धव—उद्धव जी का क्या पूछना है जिनको प्रेमपात्र और प्रेमी अर्थात् श्रीभगवान तथा श्री गोपीजन ने आप अपने मुख से प्रेममार्ग का उपदेश किया है उनकी क्या बात है । ये वही उद्धव जी हैं जिनको छोटेपन से खेलही में

भगवत्पूजा का व्यसन था। और जिनको भगवान ने अपना तत्व संसार में स्थापन करने के हेतु ब्रह्मशाप उल्लंघन करके पृथ्वी में छोड़ा उन का क्या पूछना है।

आरुणि— इनही का नामांतर निम्बार्क है और ये सनकादिकों के मत के प्रवर्तक हैं और इन के दश श्लोक जो मिलते हैं उनमें युगल स्वरूप की भक्ति का सिद्धान्त किया है।

"व्यूहांगिनंब्रह्मपरंवरेण्यंध्यायेमकृष्णंकमलेक्षणंहरिं। अंगेतुवामेवृषभानुजामुदा विराजमानामनुरूपसौभगां॥ सखीसहस्रैःपरिसेवितांसदास्मरेमदेवींसकलेष्टकामदाम्।" ये बड़े प्राचीन हैं क्योंकि श्रीमद्भागवत में बेद स्तुति में इनका मत कहा है और जहां परीक्षित् राजा को मिलने के हेतु ऋषिगण आये हैं वहां भी इनका नाम है यथा "राजर्षिवर्याअरुणादयश्च" ये श्रीस्वामिनी जी के कंकण के पूर्णावतार हैं अतएव इन को लोग सुदर्शन तत्व कहते हैं और किसी समय इन्हों ने यतियों का निमन्त्रण किया था उनके आने में बिलम्ब हुआ और जब भोजन करने बैठे सांझ हो गई इस से उन यतियों ने कहा कि अब हम नहीं खांयगे तब इन्हों ने कहा कि आप लोग खाइये अभी सूर्य है और आप नीम पर चढ़कर सूर्य बन के दर्शन दिया अतएव निम्बार्क नाम पड़ा। इन के सेब्य श्री स्वरूप श्रीगोपीजन वल्लभजी और शालिग्राम सर्वेश्वर जी अभी विद्यामान हैं तथा श्रीनिवासाचार्य पुरुषोत्तमाचार्य इत्यादि धुरंधर पण्डित और हरिवंश जी, व्यासजी, स्वामी हरिदास जी इत्यादि प्रेमी इन्हीं के सम्प्रदाय में हुए हैं।

बलि—इनको सर्वस्वात्मनिवेदन भक्ति सिद्ध थी अपने पितामह साक्षात् प्रल्हाद जी से उपदेष्टा और भगवान से पात्र पावें तो फिर इनका क्या पूछना है। कहते हैं कि यतीन्द्र, बलि अंबरीष और विष्वक्सेन नाम के किसी काल में प्राचीन चार वैष्णव सम्प्रदाय थे परन्तु अब सब लुप्त हुए।

हनुमान्—श्रीहनुमान् जी की दास्य भक्ति का वर्णन ऊपर दास्यासक्ति निरूपण में कह आये हैं और क्या कहें केवल भगवान की कथा श्रवण के हेतु जिनका जीव धारण है उनके प्रेम का महात्म्य कौन कह सकता है? क्योंकि उन्हों ने भगवान से यही बर मांगा है कि "यावत्तवकथालोकेविचारिष्यतिपावनी। तावत्स्थास्यामिमेदिन्यांतवाज्ञामनुपालयन्॥" और जिनका मत अद्यापि श्रीभगवान के

मुखारबिन्द से सुने हुए विष्णुतत्व के अनुसार " मध्वमत " नाम से प्रसिद्ध है।

विभीषण—इन्हों ने कुसंगति में रह कर भी भगवद्भक्ति लोगों को सिखाई, वरञ्च " सकृदेवप्रपन्नाय तवास्मिइतियाचते । अभयं सर्वभूतेभ्योददाम्येतद्व्रतं मम ॥" यह जगदुपकारिणी प्रतिज्ञा इन्ही के हेतु हुई है ।

८४ ॐ यइदं नारदप्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसति श्रद्धधते सभक्तिमान् भवति सप्रेष्ठंलभते सप्रेष्ठंलभत इति ।

इस नारद जी के कहे हुए शिवानुशासन पर जो विश्वास और श्रद्धा करता है वह भक्तिमान् होता है, वह प्यारे को पाता है वह प्यारे को पाता है ॥ ८४ ॥ इति

उपदेश करके उसका फल कहते हैं । विशेष करके प्रेष्ट शब्द से यह दिखाया कि भगवान इत्यादि को ब्रह्म, विष्णु, नारायण, भगवान इत्यादि भावों से तो और लोग भी पावेंगे परन्तु प्रियतम भाव से वही पावेगा जो इस प्रेम सूत्र पर विश्वास करेगा और प्रेम मार्ग पर चलेगा ।

इति नारदीये भक्तिशास्त्रे दशमअनुवाक समाप्त हुआ।

यह श्रीनारद जी का कहा हुआ भक्तिशास्त्र दस अनुवाक में "तदीयसर्वस्व" नामक, तदीय नामांकित अनन्य वीरवैष्णव हरिश्चन्द्र कृत भाषा भाष्य सहित समाप्त हुआ । इति ।

सूचना।

श्रीनारदसूत्रभाष्य—तदीयसर्वस्व।

प्रथम यह सूत्र केवल वृत्ति समेत हरिश्चंद्रास म्यागझीन में छपा है. उसी-पर से पृथक पुस्तकाकार भी यह चतुःश्लोकी सहित छपा है। बाबू हरिश्चंद्र जीने जो भाष्य (तदीयसर्वस्व) लिखा वह 'कविवचनसुधा' में क्रमशः छपता गया और तदनंतर पुनरपि स्थान स्थान पर न्यूनाधिक संशोधन करके बाबू साहब ने यह पृथक् पुस्तकाकार क० व० सु० पर से छपवाया। अबकी ग्रंथावली में तीनो पुस्तक मिलाकर छपवाया गया है। और नारदसूत्रवृत्ति में जहां कुछ भिन्नता जानी गई उसको उसी सूत्र का अंक देकर टिप्पणी (नोट) में निवेश किया है। क्योंकि एकही पुस्तक से सर्व काम चल जाय। अतएव पाठक वर्ग भक्ति मर्म जिज्ञासु इस बात को उचित जान कर भगवत्प्रेम में अनुरागी हों—

कलाप्रकाशक—